TEXT DARK WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182773

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.08/R16V Accession No. G.H.1760

Author राजेन्द्र किशोर और सिंहा रणधीर

Title विविधा ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

वि वि धा

(अर्द्धवार्षिक काव्य-संकलन)

सम्पादक :
राजेन्द्र किशोर
रणधीर सिनहा

श्रेष्ठ साहित्यागार के लिए
श्री उदयराज सिंह के प्रबन्ध से
अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित

मुद्रक :
श्री सुरेश कुमार
अशोक प्रेस, पटना—६

मूल्य
दो रुपए

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता :
राजेन्द्र किशोर,
रिसर्च स्कॉलर्स ब्लॉक,
न्यू यूनिवरसिटी होस्टल,
पटना—६

पूर्व-कथा

'विविधा' के प्रकाशन से कुछ लोग बड़े दुखी हैं। तुलसीदास के चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए हम सब से पहले उनकी ही वन्दना करते हैं। भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें!

'विविधा' के प्रकाशन से कुछ लोग बड़े प्रसन्न हैं। हम उनकी वन्दना नहीं करेंगे। हम उनका अभिनन्दन करते हैं। वे हमारे सहयोगी हैं। वे हैं तो हम हैं, वे नहीं हैं तो हम नहीं हैं। इसलिए, भगवान् से हमारी प्रार्थना है कि हमारे ये सहयोगी सदा स्वस्थ रहें।

'विविधा' के प्रकाशन से कुछ लोग न तो दुखी हैं, न प्रसन्न। इन्होंने हमारे लिए न शुभकामनाएँ कीं, न हमारा अशुभ ही चाहा। ऐसे निष्क्रिय लोगों के लिए हम भगवान् से कोई भी प्रार्थना नहीं करेंगे।

आज का युग प्रयोगों का है। जीवन के हर क्षेत्र में नित नए प्रयोग हो रहे हैं। जिन्हें कविता के क्षेत्र में किए जा रहे प्रयोगों से चिढ़ है, उन्हें दूसरे क्षेत्रों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए, जैसे कृषि में 'जापानी-खेती'। एक और भी नया क्षेत्र है, जहाँ हमने प्रयोग किया है। टेंट में एक भी पैसा नहीं और 'विविधा' छप कर आपके पास पहुँच गई। यह कंगाल कवियों द्वारा उत्पादन के क्षेत्र में किया गया प्रयोग आज नहीं तो कल अवश्य सार्थक होगा। और जब तक यह विश्वास जीवित रहेगा, 'विविधा' जीवित रहेगी।

सुना है, युगों पहले भारत के किसी प्रदेश में एक ग़रीब ब्राह्मण रहता था। एक दिन उस प्रदेश के राजा ने यह घोषणा की कि जो कोई ब्राह्मण राज्य को

अधिक-से-अधिक धरती पर अपना अधिकार कर लेगा, उसे आधा राज्य दे दिया जाएगा। होड़ लग गई। सभी अपनी-अपनी सीमाओं का विस्तार करने लगे। अधिकार की नई परिधियों का जन्म और विकास होने लगा।

निर्णय का दिन आया। राजा निर्णय करने यात्रा पर निकले। घूमते-घामते अंत में राजा उस ग़रीब ब्राह्मण के घर पहुँचे। सवाल किया—"ब्राह्मणश्रेष्ठ, आपने अपने अधिकार का विस्तार नहीं किया ?"

ब्राह्मण राजा की बात सुनकर हँस पड़ा। बोला—"राजन्, यह देखो, मैंने मकान का घेरा तोड़ दिया है।"

राजा ने सुना, देखा और उस ब्राह्मण के चरणों पर गिर पड़े। गद्‌गद स्वर में बोले—"ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप आधे ही नहीं, पूरे राज्य के अधिकारी हैं। स्वीकार कीजिए।"

ब्राह्मण ने राज्य लेना तो स्वीकार नहीं ही किया। राजा उसके आशीर्वादों के साथ घर लौट गए।

'विविधा को भी राज्य नहीं चाहिए। जिसने परिधि तोड़ दी हो, वह सीमा कैसे स्वीकार कर सकती है ?

'विविधा' का प्रकाशन विलम्ब से हो रहा है और इसका हमें हार्दिक दुख है। हम चाहते थे कि इसे समय पर निकाल दें, किंतु प्रेस की कुछ असुविधाओं के कारण हमने जो चाहा, नहीं कर सके। बाद में जल्दबाजी के कारण बहुत-सी त्रुटियाँ, जिनसे हमें भय लगता था, इसमें आ गईं; जैसे, छपाई की भूलें। यह सही है कि पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ लेंगे, परंतु हम यह सोचते हैं कि हमारा कर्त्तव्य कलंकित हुआ। हम अक्षम्य हैं, क्षमा नहीं माँगेंगे। हाँ, अगले अंकों में एक भी भूल नहीं होगी—हम वचन देते हैं।

पहले विलम्ब और बाद में जल्दबाजी के कारण हमारी योजनाएँ मन की मन ही में रह गईं। हम प्रत्येक कविता पर विस्तृत टिप्पणी देना चाहते थे, लिखी भी गई, लेकिन नहीं दे सके। हम प्रत्येक कवि का चित्र देना चाहते थे, ब्लॉक भी

बन गए, किंतु नहीं दे सके। हम इस अंक में आधुनिक कविता पर दो तगड़े निबंध देना चाहते थे, वह भी नहीं हुआ।

किंतु हम वचन देते हैं कि अगले अंक से पाठकों और कवि-बंधुओं को हम से कोई शिकायत नहीं होगी। अगले अंक से हम पृष्ठ-संख्या भी बढ़ा रहे हैं, क़ीमत यही रहेगी।

इस अंक में संकलित सारी कविताएँ प्रथम श्रेणी की हैं, ऐसा हम दावा नहीं करते। शायद कुछ ऐसी कविताएँ भी इस संकलन में हैं, जो न होतीं तो अच्छा था। लेकिन एक यही विंदु है, जहाँ हम विवशताओं से पराजित हो गए। फिर भी, इस संकलन से प्रबुद्ध पाठकों को निराशा नहीं होगी—ऐसा हमारा विश्वास है। तुलसी के बड़े पुष्ट पत्तों में ज़्यादा रस होगा—यह तो तय ही है, परंतु छोटे पत्ते भी तुलसी के ही हैं!

अंत में हम अशोक-प्रेस के श्री उदयराज सिंह जी के प्रति अपनी विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। हमारे उत्साह को उनसे संजीवनी मिली है!

राजेन्द्र किशोर,
रणधीर सिनहा

तालिका

श्री अजित कुमार
श्री अनन्तकुमार 'पाषाण'
श्री अनुरंजन प्रसाद सिह
श्री अमर कुमार
श्री अवधेन्द्र देव नारायण
श्री अंचल
श्री उदयशंकर भट्ट
श्री उपेन्द्र नारायण सिनहा
श्री उमाकांत वर्मा
श्री कृष्णकुमार विद्यार्थी
श्री कत्तिक नाथ मिश्र
सुश्री कीति चौधरी
श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
श्री केदारनाथ सिह
श्री गजानन माधव मुक्तिबोध
श्री गिरिजा कुमार माथुर
श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय
श्री चन्द्रकांत सिह
श्री जगदीश गुप्त
श्री धमवार भारती
श्री ध्रुवचन्द्र ध्रुव
श्री नगेन्द्र कुमार
श्री नरेश
श्री नरेश मेहता
श्री नलिनविलोचन शर्मा
श्री निराला
श्री परमानन्द दोषी
श्री परमानन्द पाण्डेय
श्री पुरुषोत्तम खरे
श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'
श्री प्रभाकर माचवे
श्री प्रभाशंकर मिश्र

श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी
श्री बजरंग वर्मा
श्री ब्रजविलास
श्री बालकृष्ण उपाध्याय
श्री बालकृष्ण राव
सुश्री मधु
श्री युगल
श्री रघुनाथ प्रसाद 'विकल'
श्री रंजन सूरिदेव
श्री रणधीर सिनहा
सुश्री रमा सिंह
श्री राजकमल
श्री राजेन्द्र किशोर
सुश्री राधा
श्री राधाकृष्ण पोद्दार
श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर'
श्री रामचन्द्र वर्मा
श्री राधाकृष्ण सहाय
श्री रामानन्द 'दोषी'
श्री रामनरेश पाठक
श्री रामेश्वर सिंह काश्यप
श्री लक्ष्मीकांत वर्मा
श्री वसंत कुमार
श्री श्रीकांत गोविन्द
श्री श्रीकांत वर्मा
श्री श्यामनंदन सहाय 'सेवक'
श्री शंभू नाथ सिंह
श्री सतीश्वर सहाय वर्मा
श्री सूर्यप्रताप सिंह
श्री सिद्धनाथ कुमार
श्री हरिमोहन श्रीवास्तव
श्री हरेन्द्रदेव नारायण

स्मृति-गीत

श्री हरेन्द्रदेव नारायण

करुणे, तेरी याद जगी, नीरव रजनी।
इस पतझर-सा मर्मर करता, दुखता है मन,
जैसे कोई पथिक जा रहा निर्जन पथ पर
चिर-निःसंग, करुण, सेता उन बीते क्षण को,
पिक ने पुकार ली, जैसे भंकृत आगमनी!

कितने वर्ष उड़े जीवन के, जैसे जल-पंछी उड़ते हैं—
दुःख-सुख आसव से आकुल कितने मेरे छन बीत गए;
मैं असहाय मनुज-पथ पर चलता जाता हूँ
द्वेष घृणा से भरी साँस लेता है काल-फणी!

सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र नाचते अंबर-पथ पर,
जैसे मनुज प्रपंच बीच है नथा डोलता
जैसे जीवन साँसों के हिंदोलों पर हो
यह प्राण-कथा सुस्मिति-सी कैसी तुनुक बनी!

घन-घमण्ड आये, छाया सहसा गगनांगन;
जैसे दुःख की आँधी उमड़ी मानव-मन में—
कवि-दृग में हो जैसे दारुण स्वप्न छा गया—
मैं मानव, करुणा से मेरी कथा बनी।
करुणे, तेरी याद जगी, नीरव रजनी।

अनगढ़ स्वप्न

श्री हरिमोहन श्रीवास्तव

सेज पड़े हैं भाव रात के जागे
ओरे प्रात अजान दान क्या माँगे।

कलँगी बिखरी राजकुँअर की
लँगड़े सब सरदार,
दो टुकड़ों में पड़ी टूट कर
पानी की तलवार,
सोए पहरेदार, चोर बन घर वाले सब भागे।

चाँद किरण की बनी गुजरिया
मुरझाई, करिआई
लाज छोड़ कर सजी सुहागिन
लेती है जमुहाई
बिखर गए माणिक-मुक्ता के सपनोंवाले धागे।

इधर उधर दो चार खिलौने
बेसिर बे-मुँह - पैर
उतरा उतरा डूब रहे हैं
नहीं पा रहे तैर,
तोष कहाँ जब भाग लिख गए हैं सुख दिन
के नागे।

टूटे पड़े घरौंदे,
मुहरे पिटे, हिराने खेल,
रंग रंग में मिल न पा रहा
फैला है अनमेल,
लाख किरण के राजा छिप क्या पाए
तेरे आगे।
तो फिर बना अजान दान क्या माँगे।

सपने टूट गये शायद

श्री सिद्धनाथ कुमार

कोहनी टिकाये थकी मेज पर
शीश झुकाये हाथों पर
क्यों अपनी पलकों में
अपने ही डूब रहा ?
कुछ सपने टूट गये शायद !
रंगीन काँच के टुकड़ों-से
खिड़की ने बाहर फेंक उन्हें।
स्मृतियों के बच्चे आ कर उनको चुन लेंगे !
हैं स्वप्न टूटते, उन्हें टूटते जाने दे,
लेकिन रख इतना ध्यान,
न अपने टूट कभी !
तू नहीं स्वप्न की निर्मिति,
तू निर्माता है !
तू बना रहा,
तो कितने स्वप्न बना लेगा !

धुँधले स्वर

श्री सूर्यप्रताप सिंह

आते हैं
जाने कितनी दूरी से
तिर कर
मुझ तक ये स्वर
बहके आते हैं।
अर्थ-भाव-हीन
मात्र ध्वनि ये रह जाते हैं।
फिर भी
ये स्वर मुझको भाते हैं !
जाने किन प्राणों के

टूटते सितारों की झनकन ये,
जाने किन हृदयों की
लहरों की लहरन ये,
जाने किस परदेसी की
बिसार पर
बेबस मन की
बेचैनी की छलकन ये !
बोध नहीं ज्ञेय
किन्तु
अर्थहीन ध्वनि पी
ये प्राण अघा जाते हैं !
आते हैं
जाने कितना दूरी तेर
यहाँ आते हैं !

पाँच वर्षों की संध्या

श्री सतीश्वर सहाय वर्मा

पाँच वर्षों की संध्या !
न बीती, न बदली ।
मेरी प्रतिरूपिका—
कजली
रोज आती उसी तरह
वैसी ही
धुँधली
असंख्य तारों में
गगन के काले धब्बों-सी
बदशक्ल संध्या !!
मंदिर में साँझ
साँझ की आरती
बोल उठी
शंख घड़ियालों की भारती
परन्तु,—
सर्वव्यापी मूकता
निगल जायेगी संध्या !!!

आँगन में किलकारी—
कोलाहल भरे शिशु;
एकटक
निर्निमेष देखती
ओसारे के खम्भों से
सिर टिकाये
मुँह बिधुआये
जैसे हो कोई बन्ध्या !
पाँच वर्षों से संध्या !! अचल संध्या !!!

याद

श्री शंभूनाथ सिंह

अश्रु भीगे अधर
जो थे ओस गीली दूब
मेरी गोद में
वह तो तुम्हीं थे ।

गीत माते नयन
जो थे गन्ध पूरित गगन
मेरी गोद में
वह तो तुम्हीं थे ।

हास भीना मौन मुख
जो था सुबह का शुक्र
मेरी गोद में
वह तो तुम्हीं थे

साँस रीती देह
जो थी शिखर से टूटी हुई हिम-शिला
मेरी गोद में
वह भी तुम्हीं थे ।

जीवन का गीत

श्री श्यामनंदन सहाय 'सेवक'

क ग

ख

क आदमी का मस्तिष्क,
जो आदमी की खोपड़ी में
पट है शीशे का,
जिसकी एक ओर की हर सीधी तसवीर
दूसरी ओर
उलटी तसवीर का निर्माण
करेगी ही।

ख प्रत्यक्ष वस्तु या स्थिति,
जो ज्ञातव्य है
देश और काल की अपनी सीमा में,
जो ज्ञातव्य है
देश और काल के अपने संयोग में भी।

ग आदमी का अदृश्य गंतव्य,
एक अदृश्य विराम,
जो संकेत है धुंधला-सा
आदमी के हौसले का
और हर आदमी के
अपने इतिहास का भी।

आदमी का साधारण जीवन :

जब 'ख' प्रतिलक्षित होता है
'क' पर
तब 'क' बन जाता है
क+ख+(-ख)
जब 'ग' प्रतिलक्षित होता है
'क' पर
तब 'क' बन जाता है
क+ख+(-ख)+ग+(-ग)
और इसलिए—
कि क+ख+(-ख)+ग
बराबर है विराम के,
बराबर है मृत्यु के,
प्रतीक है जीवन का
—ग ही।

अनायास

श्री श्रीकान्त वर्मा

अनायास ही तुमसे भेंट हुई,
एक गीत उठा
और कागज पर उछल गया!
सुधियाँ खड़कीं,
ध्वनियाँ बहकीं—
चुप्पी का मौसम अनजाने ही बदल गया।
आँखों ने आँखों में सपने बोए,
अधरों ने अधरों से गपशप की,
शब्दों को भरमा खुद शब्द खोए,
हाथों ने हाथों को दी थपकी।
अनायास ही आँसू आँखों में आए,
अनायास ही गिरने के पहले सम्हल गए!
अनायास ही
तुमसे भेंट हुई.....!!

भूआ

श्री श्रीकान्तगोविन्द

जादू के पंखों पर चढ़ कर
तुम कौन कहाँ से आते हो?
दिन की उज्ज्वलता में भी तुम
तारों सी चमक दिखाते हो।

क्या किसी सौरमंडल के तुम
निर्वासित हो नक्षत्र-लोक,
या किसी निठुर जादूगर के
मंत्रों से शापित राजपुत्र ??

अपने उर में सिमटा लाए
किस धरती का यह बीज नवल ?
किस महाशून्य में जीवन का
अंकुर उपजाने जाते हो,
हे आदि सृष्टि के देवदूत ?

तुम हो वसन्त ऋतु के अनमोल
शून्य में खिलने वाले फूल।
पर बच्चों के उर में चुभते,
मानों तुम उनकी पंखहीनता
पर हँसने वाले हो शूल।
पल भर वे तुमसे खेल-खेल कर
अपना मन बहलातेः
फिर अपनी चपल उँगलियों के
घेरे में तुमको रखने की
लेकर अतृप्त-सी ललक, चाह,
वे तुम्हें गगन की नील जलधि में
फूँक-फूँक कर,
अपनी विस्मित आँखों से
दुलरा कर कहते, :—
"वह परियों का व्योम यान है
चला जा रहा किसी परी के दूर देश।"

तुम हो सिरीष के रेशों से
कोमल काँटों की गंध—
या हो रेशम के चाँद !—
जो मेरी स्मृतियों में चुभ-चुभ कर
लाख-लाख अभिलाषाओं के
ज्वार उठाता चलता है !
तुम मेरे बचपन के वसन्त
के हो नीरव सन्देश !

धूलभरी ज़िंदगी

श्री वसंत कुमार

उड़ रही है
उड़ रही है
धूलभरी ज़िंदगी !
पछेया हवा का जोड़,
युग-पथ की नई मोड़,
कण कण में
जन-जन में
उड़ने का मचा शोर !
ग्रीष्म की दुपहरी में
जल रहा है आसमान
खेत खलिहान सभी
उबल रहे बियावान
और उधर—
गली गली
डगर-डगर
उड़ रही है दलितों की ऊर्ध्वमुखी ज़िंदगी !
धूल भरी ज़िंदगी !
धूल अब न धूल है,
चेतना-प्रदीप्त फूल है,
प्रलय की घटा-सी यह
क्रांन्ति की जटा-सी यह
धूल की उड़ान यह एक नई कल्पना है
मिट्टी के जीवन का एक सत्य सपना है !
नदी के कछार से
बवंडरों का कारवाँ
पादपों को तोड़ते
सरि को झकझोरते
धारों को मोड़ते

पवन-ऊँट पर सवार, दूर तक कतार बाँध
बढ़ता ही जा रहा है पर्वतों को लाँघ-फाँद,
दूर किसी देश में
पहाड़ियों के वेश में
क्रांति के जवान शांति खोजने चले हैं, देख!
झक-झक-झक झाँय-झाँय
झक-झक-झक झाँय-झाँय
उधर देख, चल रही हैं मिल की घन-चक्कियाँ,
पिस रही हैं चरर-चरर रजकण की हड्डियाँ!
किंतु उधर—
लोह को फोड़कर
मिल की मशीनों की शृंखला को तोड़कर
काले-काले धुएँ के उग्र जलद-वेश में
दूर शून्य-पंथ पर
भटक रही क्रुद्ध मुक्त सिंहनी-सी ज़िंदगी
भूपर भी कौंध रही बिजलियों की ज़िंदगी!
उड़ रही है
उड़ रही है
धूलभरी ज़िंदगी!

मसीहा और गुण्डा

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा

फौलाद की कीलें वही हैं
वही तख़्ता है
गर्दन पर वही दाग़
हथेली और छाती पर वही गहरे घाव
निर्मल·····
शांत·····
निद्रालस·····
विमुग्ध आँखों में दर्द का राज़
वही, हाँ, वही है काँटों का ताज

लाशों में कोई फ़र्क नहीं
घावों में अन्तर नहीं
रक्त·····
स्वेद·····
इतिहास में कोई लघुतर नहीं
एक ही चार्जशीट·····एक ही फैसला

तुम जिसे गुण्डा कहते हो
मसीहा कहोगे उसे ही
हत्या ही लक्ष्य है तुम्हारा
तुमने ही मारा
मसीहा को·····गुण्डा को

ओ आस्तिकता के समर्थक
मरने के बाद मसीहा—
मरने के बाद गुण्डा—
दोनों में फ़र्क क्या?
दोनों लाशें—अभिन्न

इसे, लेकिन, तुम नहीं समझोगे
क्योंकि तुम हर मसीहा को
पहले गुण्डा कह हत्या करते हो
फिर उसे मसीहा कह
उसकी ही पूजा·····

नींद को बुलाता हूँ

श्री रामेश्वर सिंह काश्यप

नीम की फुनगियों पर
चाँद को हिलाता हूँ
सिर हिला-डुला कर मैं।
चाँदनी टहलती है
रात की ख़ामोशी की
धड़कनों की सीढ़ी पर।

बाग़ में दरख्तों की
साँवली कतारों में
भेद हैं, इशारे हैं;
और उनकी परछाईं
बेहोश-सी बिछी यों है,
मस्त प्रेतिनी कोई
खोल कर काली चूनर
छोड़ गई जल्दी में
दौड़ गई नंगी हो
ताल में नहाने को।
साँप से डँसा-जैसा
चाँदनी में मूर्छित-सा
ताल तलमलाता है।
ताड़ पर उनींदा गिद्ध
पंख फड़फड़ाता है,
ताड़ खड़खड़ाता है!
एक मेघ आवारा
चाँद पर खिंचा आता,
रात की तबीयत में
मैल आ गई शायद!
फुसफुसा रहा खतरा,
तन रहा है सन्नाटा,
दाँत पीसती चुप्पी,
ऐंठती हुई सिहरन,
भींगी हुई, घायल-सी क्षत-विक्षत
हाँफती हुई चलती लंगड़ाती
हवा कर रही गोया जासूसी।
मींड़ ले रहा कोई,
डूबती हुई सी चीख़
फैल रही चारों ओर।
चाँद दे रहा पहरा;
रात की ख़ामोशी के
बंद क़ैदखाने से
नींद को बुलाता हूँ।

क्वार की साँझ

श्री रामनरेश पाठक

धान की पौध,
पान की बिरवाई
पछेया आग दे गई,
पुरवा दग़ा
दोनों दहक गयीं।

× × ×

पनछन्ने की कुटिया,
गोरी की माँग
'झनका' लूट गई,
'पो आरी' मचली
दोनों सूनी रह गयीं।

× × ×

सोभर की छाती,
शुकनी की आश
हँसिया धरी रह गई,
सूप उदास
दोनों दरक गयीं।

गीत

श्री रामानन्द 'दोषी'

मधुभय गान कभी गाती है,
नन्हीं-सी यह प्यास अधर की
हो तूफान कभी जाती है।
नयनों में वह भूम कहाँ है,
अन्तर अब निर्धूम कहाँ है;
मत वीणा के तार टिकोरो—

यह तुमको मालूम कहाँ है ;
आँसू से भी ज्यादा गीली
हो मुस्कान कभी जाती है।

सुधि का मृग, कंचन की काया,
खोया-खोया-सा बौराया ;
छवि-संकुल उस वन-वीथी में—
खोज न लेकिन तुमको पाया ;
अन्तस-पीर पिया-प्राणों से
हो अनजान कभी जाती है।

कम्पित तन घन अवगुण्ठन में,
लाज निगोड़ी नमित नयन में ;
लौट निठुर तुम चले द्वार से—
अर्पण के इस मादक क्षण में
मेरी लाज, तुम्हारी करुणा
हो व्यवधान कभी जाती है।

यान गान के जो तैराए,
ऊब-डूबते-से उतराए ;
जितना ही अवगाहा मन को—
पीड़ा के सागर गहराए ;
मेरी यह अनुभूति तुम्हारा,
हो अनुमान कभी जाती है।

प्राण, मिलोगे भुज फैलाए,
या नयनों में प्रश्न जगाए ;
इस उलझन में उलझ-सुलझते
बढ़ते जाते पग पगलाए ;
मेरी राह इसी दुविधा में
हो आसान कभी जाती है।

स्वयं का वृत्त

श्री राधाकृष्ण सहाय

स्वयं का वृत्त
फैला·····फैला·····फैला
निस्सीम·····
अन्तहीन·····
'मैं'
डूबा·····डूबा·····डूबा !
अतीत का विश्व
उतर रहा
कल्पना औ'
मन के पट पर·····
कुहेलिका से आच्छादित
व्यक्तित्व का
डूबना···डूबना···डूबना !
स्वयं के वृत्त
में
बँधा, घिरा
'मैं'
चिल्लाता·····दंशित·····विक्षिप्त !

रूप-दर्शन

श्री रामचन्द्र वर्मा

संध्या में जब उतरेगा पहला तारा,
अम्बर के धूमिल पट पर,
फिर चाँद उठेगा कैथ वृक्ष के ऊपर
ऊँचे सरपत की झुरमुट में छिपता-सा,
गँवई का सारा वैभव छिप जायेगा।
अँधियारा बढ़ आयेगा,
सूनी सब लीकें होंगी,
दीपों की टिमटिम आभा
आलोकित होगी पथ से,
हर द्वार भव्य सुषमा की
नव ज्योति करेगा धारण।
सहसा मेरे अन्तर पर

छायेगा रूप तुम्हारा
दीखेगी छवि की प्रतिमा,
तुम दूर बहुत हो मुझसे
विश्वास नहीं यह होगा ।

ब्लैक आउट

श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर'

काले धब्बों भरी रात
और उस पर बादलों का समूह
बढ़ते चले आते ढेर के ढेर
दल बाँधे
तीर और कमान साधे
अफ्रीका की काली आदिम-जातियों-सा
जिनका कोलतार-सा गात
और बिजली-सी चकमक भूरी आँखें
कानों में कुंडल
कटि में क्षुद्र घंटिका
जिसकी टुन-टुन कर्णकटु आवाज
रह-रह सुनाई पड़ती है
उस मनहूस बेला में
जब रहती है —
सारी दुनिया
ब्लैक आउट

वह !

श्री राधाकृष्ण पोद्दार

जीवन की लतिका लहराई !
खिल उठी रूप की ज्वाल
स्नेहमय कली,
भोर की ओस-बूँद से
छलक छलक,
मधुनीर भरी !
अपने आनन पर डाल,
सुबह की पहली किरणों का
झीना अवगुंठन—
धीरे मुस्काई, वह
किंचित् शर्मायी थी !
वह हँसी कि
दुनिया लुटी, और
वह खिली नहीं,
हो गया विश्व
प्रणयातुर,
विह्वल !
उसकी विभा,
रूप की ज्वाला,
फैली जग के कोने-कोने !
छू गई, विश्व के प्राण
कली की हल्की पहली
रूप लहर !
रह गया किन्तु
याचक केवल
कुछ सिहर-सिहर !

कुहरा

सुश्री राधा

जिंदगी की सुबह में
कुहरा घना जो छा गया था,
दोपहर के पूर्व भी मिटने न पाया है।
जिंदगी की सुबह का कुहरा
छिपाये है चमकते सूर्य तक को ।
चाँद की उम्मीद कैसे कर सके कोई,

कि जिसके आगमन के पूर्व यह,
पहाड़-सा दिन काटने ही को पड़ा है।
आज तो ऐसी भयानक सील, ठिठुरन,...
नोनी लग गई है देह की इस
गंदुमी, माटी-बनी दीवार में,
कि कोई माघ की ओले भरी
बरसात छोटी भी ढहा सकती इसे है।

एक आत्म-कथा

श्री राजेन्द्र किशोर

बीसवीं सदी की जटिल समस्याओं ने
मुझे उत्पन्न किया,
अकालमृत्यों के परिवार ने
मेरा लालन-पालन किया,
शत-शत वैयक्तिक-पारिवारिक-सामाजिक
ग्रंथियों से मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ,
आगे-पीछे के युग ने
मुझे हैरत से देखा—
यह···यह क्या है ?

कुछ ने ताने मारे,
कुछ ने व्यंग्य कसे,
कुछ ने ऐसी श्रद्धा से मेरी ओर देखा
कि मैंने अनुभव किया—
मैं तीनों देवताओं की सम्मिलित शक्तियों का
नया पुरुष रूपांतर हूँ।
घबरा कर मैंने सोचा—
मुझे संहार करना ही होगा
अपना या युग का।

सर्वप्रथम मैंने
अपनी लोक-शासित कामपीड़ित
प्रिया की वेणी से
प्रयास किया : आत्महत्या।
किंतु आज के वैज्ञानिक युग में
इतनी सहज मृत्यु संभव नहीं।

एक दिन सुना
लोक-शासन से आतंकित होकर
मेरी कामपीड़ित प्रिया ने
ब्याह कर लिया।
डाक्टरों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।
दो नए रोग पैदा हो गए।
मेरी प्रिया अकामा हो गई
और मैं आतंकवादी।

कई साल बीते।
एक दिन मैंने फिर प्रयास किया—
हत्या (?)···आत्महत्या (?)।
तहलका मच गया।
दो वकीलों और कई डाक्टरों के
महीनों वाद-विवाद के बाद
निर्णय हुआ—
प्यार, बस, प्यार।
इसे कहीं से भी प्यार नहीं मिला।
यह हत्या (आत्महत्या ?) नहीं है,
प्यार की खोज है।

सात वर्ष बाद
एक चरित्र-परिष्कारक-केन्द्र से
निकलने पर
मैंने श्री सत्यनारायण-पूजा का
मासिक आयोजन किया।
कीर्त्तन-मंडलियों में घूमा।
तीर्थ-यात्रा की।
कंगाल हरिजनों से लेकर
सम्पन्न ब्राह्मणों तक को उपहार दिए।
किंतु आत्महत्या के इस तीसरे प्रयास में भी
मैं नितांत असफल रहा।

तब
हार कर
चौथे प्रयास के सिलसिले में
मैंने एक अत्यंत कुरूप औरत से
ब्याह कर लिया।
और बारह साल के एक युग में
चौदह बार पिता बना।
(चौदह आत्महत्याएँ !)
मगर कोई भी जिया नहीं,
किसी ने भी माँ का दूध पिया नहीं।
डाक्टरों ने बताया—
इन अकारडजातों के पीछे
माँ के शरीर में विटामिनों की कमी का
राज़ है।
यानी ?.....
(ओ अकारडजातों की माँ !
यह तो मैं भूल ही गया था
कि तुम अकालमृत्यों की पुत्री हो !)

एक दिन
लोगों ने मुझे परिव्राजक के वेश में देखा
और श्रद्धा से शीश झुका दिए।
नर-नारी
(जिनमें निपूती युवतियों की
संख्या विशेष है।)
मेरे मोक्षकामी व्यक्तित्व के आगे
समर्पित हो गए।
(मोक्ष शब्द की वैज्ञानिकता पर
ध्यान दीजिए :—
मोक्ष; असंख्य ग्रंथियों से
आच्छादित व्यक्तित्व की
सचेष्ट निर्ग्रन्थता।)
किंतु आत्महत्या का यह प्रयास भी
असफल हुआ।

अपने चारों ओर फैले
आकर्षणों की परिधि में
मोक्ष की कामना लिए
(कामना !···उफ़, यह नहीं गई।)
चक्कर काटता रहा।
वृत निरंतर सिकुड़ता गया,
कामना निरंतर बढ़ती गई।

तब
मैं
आत्मघात के प्रयासों में
निरंतर असफल होकर
अपने सम्पूर्ण परिपार्श्व पर टूट पड़ा।
रीति तोड़ी,
नीति तोड़ी,
प्रीति तोड़ी।
आगे-पीछे के युग ने
मुझे हैरत से देखा—
यह···यह क्या है ?

एक दिन
सामाजिक रीति-नीति के
दिग्गजों ने
मेरे विध्वंसक व्यक्तित्व से
आतंकित होकर
मुझे क़ैद कर लिया।
बड़े-बड़े डाक्टर आए।
मेरे मस्तिष्क की विविध परीक्षाएँ हुईं।
प्रेस-कम्यूनिके निकाला गया—
·····'नामक व्यक्ति के
विध्वंसक कार्यों के मूल में
दमित काम और हीन-भावनाएँ हैं।'
तय हुआ—
और बिजली की कुर्सी पर बैठाकर
मेरी वैज्ञानिक मृत्यु की व्यवस्था कर दी गई।

तो,
आज तो मैं नहीं हूँ।
किंतु मरने के वक़्त मैंने
जो सोचा था
संक्षेप में बता देता हूँ।
यह सही है
कि मेरे कार्यों के मूल में
दमित-काम और हीन-भावनाएँ थीं,
किंतु मैं खुश हूँ
कि मेरे विध्वंसक कार्यों के परिणामस्वरूप
अब कोई व्यक्ति
न तो अकाण्डजातों का पिता होगा,
न किसी की माँ
अकालमृत्यों की पुत्री।
और यह भी
कि अब, शायद, कोई भी व्यक्ति
आत्महत्या के प्रयोगों की ओर
अग्रसर नहीं होगा।

एक क्षण और।
सुनिए,
मरने के वक़्त मेरे मन में
एक छोटी-सी आरज़ू भी थी—
मेरे मरने के बाद
कोई मेरी आत्मा की शांति के लिए
प्रार्थना न करे,
मैं आत्मा में विश्वास नहीं करता।

कविता का भट्ठा

श्री राजकमल

साँवरे गगन के मेघों के वसन
विद्युत् के दशन
नए चित्रकार के ब्रश के दाग : सितारे
एक ही नागरी के सैकड़ों चित्र उतारे
पागल है मन
कल्पना, कामना, उपमा, श्लेष
सब शेष
धोबी पर चढ़ बैठा है मेष
रह-रह है रेंकता
दुलत्तियाँ है फेंकता……
कीचड़ में फँसा है
उल्लू का पट्ठा
लगी है आग, पकता है भट्ठा
कविता का……

तो दुःख क्या ?

सुश्री रमा सिंह

फूल-सा मन मिले, प्राण की गन्ध झर-झर बिखर जाय; तो दुःख क्या ?
मेघ-सा मन मिले, आर्द्र करुणा धरा पर छहर जाय; तो दुःख क्या ?
धार-सा मन मिले, सिन्धु की थाह पा गति ठहर जाय; तो दुःख क्या ?
प्रात-सा मन मिले, छू जिसे तम-पटल सब उघर जाय; तो दुःख क्या ?
वायु-सा मन मिले, पार पर नाव कोई उतर जाय; तो दुःख क्या ?

चाँद-सा मन मिले, ज्योति की राशि से भू सँवर जाय; तो दुःख क्या ?
सीप-सा मन मिले, अनबिंधा एक मोती उभर आय; तो दुःख क्या ?
दीप-सा मन मिले, पंथ की भ्रान्ति कोई सुधर जाय; तो दुःख क्या ?
शैल-सा मन मिले, दाह से पुण्यधारा लहर जाय; तो दुःख क्या ?
शून्य-सा मन मिले, द्वन्द्व सारा जहाँ पर सिहर जाय; तो दुःख क्या ?

गतिविधियाँ

श्री रणधीर सिनहा

सहारा का
रेगिस्तान !
आपादमस्तक
सुनसान !
न नदियाँ
न पर्वत,
न काफी—
न शर्बत,
लू में जलता है—
तवे के समान !
वृक्षों का नाम नहीं—
चिड़ियों का काम नहीं,
पथिकों की खातिर—
निखरा श्मशान !
दीखते हैं—जहाँ तहाँ—
रेड़ के छोटे-छोटे अंकुर !
कंचनजंघा का
पथरीला पहाड़ !
गुम्बजों का गुम्बज,
ताड़ों का ताड़ !
पत्थरों के बीच—
कोई भी झरने नहीं !

आता सिर पटक
कोई भी मरने नहीं।
प्रतिध्वनि भी नहीं—
न कलरव है,
हवा का लटका हुआ—
पुराना शव है !
चट्टानों ने जमने नहीं दिया—
कोई भी झाड़।
दीखते हैं—
जहाँ-तहाँ—
कटहल के—
छोटे-छोटे अंकुर !

जहाँ रेगिस्तानों ने—
जीने की आस्था ही मेटी,
जहाँ पहाड़ों ने
जीवन के खेमे समेटे।
वहाँ भी—
गर्दन ऊँची कर
अपनी आस्था
जमा ही देते हैं—
चार दिन के छोकरे—
नये-नये अंकुर।

एक मुट्ठी धूल !

श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव

मैं था फूल, बन रहा धूल
चिंता के आतप से,
निराशा की बरसा से,
विपद् की बयार से,
प्रताड़ित, भूला-सा, उपेक्षित,
मैं हूँ झरा फूल !
धूमिल-सी छाया नाचती उसपार,
अश्रु-हास का अतलस्पर्श पारावार—
लहराते लहरों के आँचल अकूल, मन पर
होता है
विशृंखल पीड़ा का द्रुत विलम्बित स्खलन !

चुभ गया मेरा रूप,
बिना सिहरे पी गये वे,
छीन लिया प्राणवन्त मधु-कोष,
मृदुल-मंजुल मेरे हृदय के हाहाकार में
मूक भाव—
मरोड़ लेता, पछाड़ें खाता, उठता-गिरता—
चारों ओर उत्ताल विकूल
लहराता सागर, लहरों में लहर की बूँद
का अस्तित्व लुप्त,
जलमय, मृण्मय, पवनमय, पावकमय,
गगनमय·····

मानव की इच्छाएँ

श्री रघुनाथ प्रसाद 'विकल'

कागज की नाव है,
मानव की इच्छाएँ !
जीवन के ज्वार पर उठती हैं, गिरती हैं !
व्योम में,
बारह का सूरज जब चढ़ता है,
मानव की इच्छाएँ कुम्हलाती धूप में।
टन्-टन्-टन्-तीन फिर
बजता है जेल में;
पानी का नल-कल भी
खुलता है सड़कों पर;
दीघा के 'बाटा' के जूते के 'सोल' सी,
करवट बदलती हैं—मानव की इच्छाएँ !
चाल तेज होती है—
अमरीकन इंजिन-सी !
सर् सर् ज्यों भागता 'डरबी' का घोड़ा हो !
जीवन के अन्त तक—
मुफलिस का हो चिराग जलता ज्यों !
पार्टी के बाद भी—
जीवन की सन्ध्या में,
मोम-दीप एकाकी जलता है, गलता है !
मानव की इच्छाएँ,
बनती हैं, मिटती हैं !
कागज की नाव है, मानव की इच्छाएँ,
जीवन के ज्वार पर उठती हैं, गिरती हैं।

जग

श्री युगल

एक बूँद,
बुद् बुद।
तृषा भी,
तृषित भी।
(आँखों में करुणा भर
याचना कर रहा)
कजरारे पलकों के भीतर
नील गगन में घिरी घटा की
एक बूँद !

ज्ञान,	जीवन
ज्ञानी भी,	मरण
भिखारी-सा कर पसार	सेक्स
माँगता है ज्ञान का भंडार	भूख
जिसमें जिज्ञासा को तुष्टि मिले	सत्य
क्या है—	?

गीत

सुश्री मधु

मैंने जितने ही चित्र बनाये गीतों के
उतना ही प्राणों के समीप तू आया क्यों ?

उस बन्धन में बँधना था कितना मधुर मुझे
जिसको तैयार किया तेरी उच्छ्वासों ने,
उस कारा में घिर हृदय-कली मुस्काती थी
जिसका निर्माण किया तेरे विश्वासों ने।
जब जब भी मझधारों ने मुझे डुबाया था
तब लहरों पर बिठला तट पर पहुँचाया क्यों ?

मैं भटक रही अब तक मन की उन गलियों में
जिनमें स्वर गूँज रहा तेरी बाँसुरिया का,
कैसे वे दृश्य भुला पाऊँगी कह निर्मम—
जिनमें जादू बोता मेरी पायलिया का।
जितना नैराश्य तिमिर से डर कर भागा मैं
उतना जीवन से करना प्यार सिखाया क्यों ?

तूने तो ढूंढ़ लिया अपनी उस मुग्धा को
जिसके नयनों से छलका करती रस-गागर,
पर मेरा जीवन-गोकुल तो बीरान हुआ
कह दे कैसे इसमें उमड़ेगा सुख-सागर ?
तू सपनों की मथुरा में उत्सव नित्य मना
पर मेरे उर से अब तक निकल न पाया क्यों ?

मणिधर

श्री बालकृष्ण राव

मुड़कर देखा महाव्याल ने,
पूँछ, सदा की भाँति, आज भी
पिछड़ गई थी।
फण बेचारा, मणिमंजूषा, विषघट का
दायित्वभार ले—
चलता रहा अकेला अब तक आगे-आगे।
कितनी बार कहा, दोनों जिह्वायें—
एक साथ ही भिन्न उपायों से उत्साहित
करती रहीं पूँछ को,
कहती रहीं कि है उसका अधिकार कि वह भी
अपना धर्म निभाये,
अपना पूरा योगदान दे,
हो प्रवीण फूत्कार कला में, दंशन में पटु,
चले मिलाकर क़दम साथ गर्वोन्नत फण के।
पर बेकार हुई सब शिक्षा,
पिछड़ी ही रह गई पूँछ, रेंगती, घिसटती—
पहुँची यों ही विवर-द्वार तक
फण के पीछे।
एक बार फिर उसने मुड़कर
देखा पिछड़ी हुई पूँछ को—
फिर नतमस्तक, हतोत्साह,
कर गया प्रवेश विवर में अपने
फण एकाकी आगे-आगे।

ज़िन्दगी का गीत

श्री बालकृष्ण उपाध्याय

आँधियाँ चलीं, हुए प्रलय मगर सृष्टि की परम्परा रुकी नहीं,
इसलिये कहा कि दोस्त, ज़िन्दगी आँख मौत से सदा लड़ा रही।

सुख जो सकी न, बँध सकी न जो
ज़िन्दगी अबाध एक धार है;
हार-जीत और अश्रु-हास तो
राह में बिछे सुमन-अंगार हैं
बढ़ रही असीम सिन्धु की तरफ
ज़िन्दगी जिन्हें दुलार प्यार कर;
गा रही कि झूम-झूम कर जिन्हें
ज़िन्दगी बयार के सितार पर।

इसलिये कहा कि काल-पन्थ पर ज़िन्दगी सदैव गुनगुना रही!
इसलिये कहा कि दोस्त, ज़िन्दगी आँख मौत से सदा लड़ा रही।

एक डाल लूट ले गयी खिजाँ
दूसरी सजा गयी बहार पर,
एक माँग का सिंदूर धुल गया
माँग कुमकुमा उठी हजार पर।
एक सुबह लुटी, रात हो गयी
दूसरी परन्तु गीत गा उठी;
एक कली फूल धूल बन गयी
दूसरी परन्तु मुस्करा उठी।

इसलिये कहा कि दोस्त, जिन्दगी मौत पर कहर सदैव ढा रही।
इसलिये कहा कि दोस्त, जिन्दगी आँख मौत से सदा लड़ा रही।

एक बुलबुला क्षणिक न जिन्दगी
जो उठा, कँपा तनिक, बिला गया;
एक क्षीण दीप है न जिन्दगी
जो जला, धुँआ तनिक, बुझा गया।
एक बूँद जिन्दगी जरूर है—
सिन्धु की महानता पिये हुए;
एक रश्मि जिन्दगी जरूर है—
ज्योति की असीमता लिये हुए।

इसलिये कहा कि काल-सिन्धु में जिन्दगी सदैव मुस्करा रही।
इसलिये कहा कि दोस्त, जिन्दगी आँख मौत से सदा लड़ा रही।

मौत खौफनाक बयाबान है,
जिन्दगी जमीन का सिंगार पर;
मौत तिलमिला रही घृणा लिये
जिन्दगी टिकी अमर्त्य प्यार पर।
बीत गये लाख-लाख युग मगर
रोज-रोज द्वन्द्व विफल हो रहा,
बात कुछ विचित्र किन्तु सत्य है
जन्म है सवार, मरण ढो रहा।

इसलिये कहा कि मौत को सदा बीन फूँक जिन्दगी नचा रही।
इसलिये कहा कि दोस्त, जिन्दगी आँख मौत से सदा लड़ा रही।

प्यासी आत्माएँ

श्री ब्रजविलास

लगता जैसे
मन की गहराई में
दो झीलें लहरातीं।
कच्ची चट्टानों सी
चोटी से टूट रही
दो प्यासी आत्माएँ
जिनपर हैं मँडलातीं।
नीली लहरों में डूब रहीं
सूनी झीलें,
जिन पर अक्सर
बाँसों की गूँज-भरी
पर्वती हवाओं के भर जाने पर
पिछली छायाओं को ढँक कर
हिम पुरुषों की
काली छायाएँ तिर जातीं।

मित्र के प्रति

श्री बजरंग वर्मा

बहुत दिन हुए
तुम
मिले नहीं पार्टनर !
आठ साल
बीत गये
कॉलिज में थे जब तुम
हम भी थे
तुम्हारे साथ !
साथ-साथ
पास किया
फिर तुमने मुझे जुदा किया,
तबसे तुम्हें देखा नहीं
तब से
कुछ सुना नहीं।
समझा,
जरूर कहीं हाकिम हो गए !
पर आज
तुम प्रकट हुए एकाएक
ठीक 'मॉलकेनों' के 'इरप्शन' सा
विद्वद्जनों के बीच 'कॉरप्शन' सा
उस कविता-पत्र में
कवि के रूप में
और वह भी
विशुद्ध प्रयोगवादी !
मन ही मन
देख कर नाम तुम्हारा
छपा हुआ
'नयी-कविता' के तड़क-भड़क से भरे
'गेट अप' वाले
पहले अंक में
सोचा,
हो गया होगा
निश्चय ही बड़ा कवि
छपी है कविता उसकी
इसमें तभी।
इसी उल्लास में
हृदय के हुलास में
पढ़ गया मैं उसे
आदि से अंत तक
एक ही साँस में।
अकस्मात्
मन मेरा बोल उठा
अरे राम, यह क्या हुआ !
मीत मेरा
न हाकिम, न कवि हुआ !!

यह उद्वेलन

श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी

मेरी अन्तरात्मा का यह उद्वेलन—
जो तुम्हें, और तुम्हें, और तुम्हें देखता है
और अभिव्यक्ति के लिये तड़प उठता है—
यही है मेरी स्थिति, यही मेरी शक्ति
इसी से संलग्न मैं उन्नीत हूँ :
यीशु के कंधे पर सधा क्रॉस
इसी से विच्छिन्न मैं कमज़ोर हूँ :
लहरों पर सिहरती परछाँई,
पीपल का प्रकम्पित पात
यही है आज की प्राण-गर्भा
धरती पर कसमसाता वह बीज
जो कल का विस्फोट है
और परसों का स्वप्न-फूल
और बरसों की अटूट
फलवान मधुमती आस्था
मेरी अन्तरात्मा का यह उफ़ान
जब तक मुझे तुमसे, और तुम से,
और तुमसे जोड़ने वाला जीवंत सूत्र है
तब तक मैं बिखरूँगा नहीं, मैं मरूँगा नहीं
तब तक मेरा यह विश्वास—
कि समय की अनवरत तीव्र धारा में
कहीं मैं ठहरूँगा, कहीं मैं किनारा पाऊँगा—
टूटेगा नहीं, टूटेगा नहीं।

मैं छलिया

श्री प्रभाशंकर मिश्र

मेरे उर की पीड़ाएँ
गर जान सके होते तुम भी
तो अनजाने आवृत्ति नहीं होती प्रियवर—
'तुम छलिया हो'
अधनंगी लेटी सरिता के छिछले कूलों पर
मैं भी
सच ! बाट जोहता
लेकिन फिर नीलाभ व्योम के पोरों में
जो दर्द समाया जाता है
उसका इलाज मैं क्या करता ?
अभ्रक के चम-चम टुकड़ों में
जो जान डाल देतीं किरणें
उनको ही यह हार पिन्हा
मैं स्वयं फूल बाज़ारों में जा
बिक जाता
औ' आँक ज़िन्दगी की क़ीमत
इन सड़कों के बेडौल बाजुओं पर
अपना भी ज़ोर डाल कुछ
धूल फाँकता !
किन्तु स्नेह के कीचड़ में जो डूब चुका
उस नील-कमल पर
वादों के अनुसार नहीं मँडला पाता
मैं क्या बोलूँ
बेबस हूँ
ज़िन्दा लाशों के नये जन्म का
भाग्य लेख मैं लिख न सका
औ' इन्तज़ार की घड़ियाँ गिनते
तारों का इतिहास खोलने बैठा हूँ।

'अ-मानते'

श्री प्रभाकर माचवे

एक पत्र में मित्र ने लिखा : कम्युनिस्ट हूँ।
(किंतु कम्युनिस्ट मुझे कम्युनिस्ट नहीं मानते !)
सोचा यही तर्क तो संप्रति सारी दुनिया में है :
बौद्ध कई हैं जिन्हें बौद्ध बौद्ध ही नहीं मानते।
और कई हैं गाँधीवादी जिनको गाँधीवादी भाई
गाँधीवादी नहीं मानते (यद्यपि गाँधी थे उन्हें जानते)
यही आह रोना राष्ट्रों का प्रेम-द्वेष का,
एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़प रहा, पर ऊपर से
नक्राश्रु कहीं हैं। पंचशील को बस बखानते
युद्ध युद्ध के लिए नहीं हाँ, नहीं मानते—
किंतु शांति के लिए युद्ध जायज़ है, जैसे
एक हाथ से क्रांति-काव्य, दूसरे हाथ से फिल्म-गीत गन्दा-सा।
यही दुचित्तापन है, जिससे अकवि मानता हूँ मैं निज को
पर कुछ मित्र बड़े स्नेही हैं, नहीं मानते !

गति-गीत

श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

बढ़ रही है किरण, बढ़ रहे हैं चरण
मौत को जीत कर ज़िंदगी चल रही
काल के भाल पर पैर रख दर्प से
ज्योति की एक रेखा मचल जल रही
सभ्य संसार है अग्रसर हो रहा
ज्ञान-विज्ञान से वह प्रखर हो रहा
बन रहे नित नए शस्त्र संहार के
विश्व-बंधुत्व का स्वर मुखर हो रहा
मर सका है मरणशील मानव मगर ?
है असंभव सदा मनुजता का हनन
कढ़ रही है किरण

विश्व में मूक यह वंचना चल रही
बोल में प्रेम, उर में घृणा पल रही
शक्ति की, योग की चिर तृषित लालसा
व्यक्ति को, जाति को, देश को छल रही
शोर सब ओर संहार का बढ़ रहा
मुस्कराता मगर पास ही है सृजन
कढ़ रही है किरण

सत्य है, घिर रहे नाश के घन सघन
दीखता दूर से है मलिन-सा गगन
राह पाता नहीं, तिलमिलाता हुआ
रुद्ध हो, क्रुद्ध-सा डोलता है पवन
पर धरा की जरा को त्वरा कब रही
कब चुनौती उसे दे सका है मरण
कढ़ रही है किरण

रात ढलती रही, दीप जलता रहा
चिर प्रवासी पथिक राह चलता रहा
लक्ष्य तक पहुँच पाना कठिन था मगर
अडिग विश्वास था एक पलता रहा
अंततः पार कर यामिनी का शिविर
कर सकेगा पथिक तेज का चिर वरण
कढ़ रही है किरण
बढ़ रहे हैं चरण

घोर संघर्ष के बीच जो खिल रही
सिद्धि जो साधना के गले मिल रही
एक जीवन नया, एक दुनिया नई
है उभरती कि जो चिर अनाविल रही
प्रेम के मिल गले, फिर अहिंसा खिले
शुद्ध हो विश्व का लुब्ध अंतःकरण
कढ़ रही है किरण

पूर्व में एक ज्योतिष्किरण छा रही
जो कलुष के तिमिर-दुर्ग को ढा रही
एक वाणी भरी आत्म-विश्वास से
चेतना के नए छंद है गा रही
बढ़ चलो सत्य के पंथ पर पाँव धर
बढ़ चलो पूजने को नया जागरण
कढ़ रही है किरण
बढ़ रहे हैं चरण

स्वेटर

श्री पुरूषोत्तम खरे

आज पूस की पूरनमासी, बड़ी ठंढ है।
लगता जैसे किसी हिमानी की
डूबी-डूबी भींगी-भींगी उच्छ्वासें
किसी खोज में भटक रही हैं
लगता जैसे नील गगन से
ढुलक रही हैं ठंढी बूँदें, लगी झड़ी है
आज पूस की पूरनमासी, शीत कड़ी है।

× × ×

रात उघारी, अपने ठिठुरे अंग सिकोड़े
ताप रही दीपों की आगी !
मुँह से निकल रही भापों से
कुहरा-सा छाता जाता है !
फूल और कलियाँ पत्तों की—
भीतर की गर्मी के आलिंगन में सिमटी
और तरय्यों में चंदा की
खींचातानी मची हुई है।

× × ×

पिछले साल बनाई थी तुमने यह स्वेटर
यह स्वेटर : जिसमें तुमने अपनी पसंद के
रंगभरी इच्छाओं के, रंगीन रंगों का ऊन
खोजकर
रेशों रेशों में सुकुमार कल्पनाओं की
तन्मयता को पिरो पिरो कर इसे बुना है
बड़ी सजग हो मन उलझाए थकन भुलाए
दिन भर श्रम कर और रैन में जाग जागकर
अपने सारे काम छोड़ कर डाले इसके
एक एक घर
जैसे पंछिन रंग बिरंगे तिनके धागे
और न जाने क्या क्या ? कहाँ कहाँ से

कितनी मेहनत से ला, दिन भर श्रम कर
और रैन में जाग जाग कर
बड़ी सजग हो मन उलझाए
तन्मय होकर नीड़ रचा करती है अपना !
हाँ, स्वेटर अब पहन रहा हूँ
इसकी स्पंजी छाती मेरी छाती से कसी
हुई है
इसमें जाने कैसी गरमी बसी हुई है,
वह गरमी जो साँसों में गरमी भरती है
वह गरमी जो हर धड़कन को
बहकाने की जैसे हठधर्मी करती है ।
इसकी बाँहें जिनमें मक्खन सी नरमी है
मेरी बाँहों में बन्दी हैं
लगता है : जैसे यह स्वेटर नहीं
तुम्हारा ही तो स्नेह भरा अंचल है
जो मेरा अंतर घेरे है
लगता जैसे : आज तुम्हारी ममता मुझसे
अमर बेल की माला जैसी लिपट गई है

× × ×

लगता जैसे—— पर जाने दो——
अब तो तुम हो गई पराई—— ।

दो कविताएँ

श्री परमानन्द पांडेय

(१)

आलमारी !
काठ की
या गोदरेज लोहे की
लोग कहते
जड़ ! प्राणहीन !
किन्तु, कितनों के
अभ्र-हास
राग-द्वेष
उत्थान-पतन
विचार-विमर्श
हृदय में रख
खड़ी भवन में
अचल अटल
शांत गंभीर
पुस्तकालय की आलमारी ।

(२)

काठ की कुर्सी,
काठ का टेबुल् .
मिट्टी की देह
चमड़े का लेबल् ।

नया कोट

श्री परमानन्द दोषी

पहन कर नया नवेला कोट
धूल में जाओ लोट
तो देखने वालों के
हृदय पर नहीं लगेगी चोट ?
माँ-बाप ने पढ़ाया
खर्च करके
एक-दो वर्ष नहीं
पूरे सतरह वर्ष धीरज धरके
पर पढ़ कर बेटा
यदि कुछ कमा न सका
टूटे-फूटे घर को
फिर से जमा न सका
तो फिर उसकी
निंदा नहीं होगी भला !
जानते नहीं—

रुपयों के आगे है तुच्छ कला !
हाँ,
मैंने भी पढ़ा
वहाँ तक
जिसके आगे पढ़ाई नहीं,
शिक्षा के
कौन से किले पर
मैंने की चढ़ाई नहीं,
पर आय वाली न नौकरी की
न रिश्वत ली, न खरीदी कार
बना मुफलिस साहित्यकार····
धुली-धुलाई भेड़ फँसी कीच में,
यह कहावत सुनी है न मित्रवर !
दूसरों की बात मत पूछो
यह उक्ति भरपूर बैठती है मुझपर !

गीत

श्री निराला

सीधी राह मुझे चलने दो।
अपने ही जीवन फलने दो।
जो उत्पात घात आये हैं
और निम्न मुझको लाये हैं
अपने ही उत्ताप बुरे फल
उठे फफोलों-सा गलने दो।
जहाँ चिन्त्य हैं जीवन के क्षण,
कहाँ निरामयता, सचेतन ?
अपने रोग-भोग में रह कर
निर्यातन के कर मलने दो।

हबड़ा पुल

श्री नलिनविलोचन शर्मा

हुगली झूला—सुरसा का बड़ा वदन—
मनुज-मशक घुसते ही जाते हैं,
फिर लौट चले आते हैं,
तार बँधा है,
कुत्ता चक्कर काट रहा है
चारों ओर पूँछ के।

दो बाँहें महानगर की
मल्लूकालिंगन को फैली हैं—
'स्वागत, थके यात्रियो !'
जैसे सोल्लुंठ शब्द हो रहा
प्रतिध्वनित चतुर्दिक।
बाँहें फैली रहीं, वदन विवृत
ही रहा, नीचे से फुर्तीले
शिशु की तरह नाव एक
गई निकल चकमा दे कर,
जब भारी जहाज यह
आतंकित, आकर समीप
चीख उठता है और
निकल जाता है किसी तरह
बच कर बाल-बाल।

ये हरिण सी बदलियाँ

श्री नरेश मेहता

थीं घिरी उस साँझ भी कबरी हरिण सी बदलियाँ !!
आज तक हैं कह रहे
ये घाट के पत्थर
लहर जल, ककड़ियों के खेत;
झुरमुटों पर मृगनयन सी तितलियाँ उड़ती हुई;
साँझिल हवा SS···
सब कह रही हैं।
S पकड़ने सूर्यास्त, बढ़ते चरण चिन्हों को हमारे
यह समेटे आज तक लेटी हुई है गोमती की रेत;
दूर उस आकाश के पीपल तले

हवाओं के नील डैने थे खुले,
मृदु झकोरे छू तुम्हारा लाल अंचल
संग चलने के लिए करते सदा थे मृदु निहोरे।
पंथ की पसली सरीखी
यह उभरती जड़
जहाँ हम बैठते थे,
कह रही है—
हम मिले थे, साँझ थी, तट था यही, थीं कदलियाँ !!
थीं घिरी उस साँझ भी कबरी हरिण सी बदलियाँ !!
वर्ष बीते,
हम समय की घाटियाँ उतरे
बहुत उतरे;
दूब भी सूखी

पठारों भरे तट छितरे;
अर्द्ध डूबा बुर्ज धँसता गया होगा और भी गहरे...
मैं विरह के शाप का पहने मुकुट सहसा गया उस रात--
था चँदीले वर्क में लिपटा पड़ा
तन्वंगिनी उस गोमती का गात;
कुहर भागे गाछ SS
रस्सियों में नाव बाँधे थे पड़े चुपचाप लेटे पाट—
पंख तोले पत्तियाँ झरनी शुरु थीं
किनारों की जलभरी जड़खाइयों में
उनींदी लहरें भरी थीं;
फुनगियों पर कबूतर सी चाँदनी अलसा रही थी...
एक गहरी शांति,
नीली शांति;
तुम्हारी उरझील में भी जो समाहित हो न पायी
जल रही है आज तक मेरे हृदय में
वही पहली S...
क्रांति !!
मेरी भ्रांति !!
सत्य है अब...
हम अलग हैं, रात है, उस बाँध पर वह दूधवाला गा रहा है कजलियाँ !!
थीं घिरी उस साँझ भी कबरी हरिण सी बदलियाँ !!

दो कविताएँ

श्री नरेश

(१) रीति के तर्ज पर

नीले आसमान में
फैली हुई चाँदनी पर
साँवले बादलों के नाजुक-से मेमने,
उजले दुशाले पर रफू-से लगते हैं;
गो चाँदनी चौरंगी की किसी 'ए' क्लास
लॉन्ड्री से
अभी-अभी धुल-इस्त्री हो आई हो।
फैली हुई चाँदनी पर
बादलों के मेमने;

गोरी किसी छोकरी के गड्ढेदार गालों पर
चुंबन के दाग-से,
दायना चाँद
अपनी पवित्रता पर
बरसाती इन छींटों को
टुकुर-टुकुर देख रहा है।

(२) विरोधाभास

अब दिन छोटे-छोटे लगते हैं,
रातें भी।
जिंदगी जैसे चूहे की तेज रफ्तार
भाग रही हो।
एक बेहोशी ही पीछे है,
बाकी है।

आधा चाँद

श्री नगेन्द्र कुमार

पर्वत के माथे पर
बिखरे इन बादलों के जंगल में
दिन भर पसीना चुआकर
श्थल, हारा हुआ
दिन छिपा बैठा है।
सुबह ही बनाई थी
रोटी एक
खाई थी आधी
और आधी पर
किरणों का ढक्कन रख
छोड़ी थी रात को खाने को।
किरणों का ढक्कन हटाकर
रूखी-सूखी
टाट-सी
बासी आधी रोटी को
किस्मत के आँसुओं में भिगो रहा।
खाने के बाद तो भूखा रह जाएगा।
इसलिए देख-देख,
देर तक,
रात भर,
भूख यह मिटाता है
संतोष जल पी-पीकर।

प्यार-प्रदर्शन

श्री ध्रुवचन्द्र 'ध्रुव'

प्यार-पॉलसन्स क्रीम
जिसके 'कोट' पर ये 'लोफ' के टुकड़े!
न पूछो जायके की बात!
कैसी खुशनसीबी में पले
ये स्वाद के अंदाज़!
सचमुच, लुट गये तुम?
पर, कहाँ टपका अभी तक लार मुँह से!
खैर, छोड़ो बात;
लेकिन, जान लो तुम
जब कभी ऐसा सुअवसर हो
कि टपके लार मुँह से,
यह समझ लो
तुम्हारा प्यार शाश्वत हो गया।
खनखनाते प्लेट खुशबूदार
मानों खनखनाती चूड़ियाँ हों।
पर, ज़रा ठहरो, रुको, रोको अभी बेताब
हाथों को
कि थोड़ा आशिकाना रंग जमने दो,

अभी आशिक 'अमेचर'
दबाये राज़, मन के उफ़नते तूफान को
तुम तब तलक ठहरो
कि जबतक चाय भी आ जाय
आह भी, आह भरती भाफ़ वाली

और, जब आ जाय सचमुच
तो, ज़रा झुककर प्रकम्पित सन्तुलनमय
होठ अपने
सहज ही रख दो
चाय के कप पर।

घाटी के बादल

श्री धर्मवीर भारती

[कुमायूँ में नैनीताल के पास एक घाटी है—ताकुला की घाटी ! उसमें बादलों की विचित्र क्रीड़ाएँ होती रहती हैं और कभी-कभी बादल उठता है और सारी घाटी को धीरे-धीरे ग्रस लेता है—ये पंक्तियाँ वैसे ही एक अनुभव की वाणी देती हैं।]

जाने कब, किस गुहानीड़ से उड़कर गुपचुप
मेघधूम का योजन विस्तृत पक्षी सहसा
प्रगट हो गया घाटी के सुदूर छोर पर
गहरे भूरे, मीलों लम्बे डैने खोले·····

प्रात धूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी-अभी जागी
खुमार से भरी
नितांत कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिस कर
रति श्रान्ता-सी मलिन हो गई।
थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत शिखरों पर
शीतल कपोल धर
क्षण भर गहरी नींद सो गया ;

धीरे-धीरे
मूर्च्छित घाटी में जैसे कुछ साँसें लौटीं
(अलस झकोरे, देवदारु में, चीड़ कुंज में
गंध लदे—मादक, भीगे से)
मेघधूम ने करवट ली—
अँगड़ाई में ज्यों
सौ-सौ गहरे भूरे डैने आगे पसरे,
उड़े,
खड़े पर्वत शिखरों से टकरा कर
मड़राये
मुड़े—
कटानों में
दर्रों में, भटके
फिर ढालों पर धीमे-धीमे, हाँफ हाँफ कर, चढ़ने लगे बटोही जैसे !

जहाँ अभी घाटी थी लहरधारियोंवाली
हरे खेत थे
लाल छतों वाले छोटे पर्वती गाँव थे
वहाँ नहीं है कुछ भी अब
वह जादू था,
वह इन्द्रजाल था
लुप्त हो गया !
सच है केवल मेघधूम यह !
ढालों से टकराते क्षीर महासागर सा
फेंक रहा है उजला फेना

लाल छतों वाले छोटे पर्वती गाँव
या हरे खेत
या लहरधारियोंवाली घाटी

ये थे केवल मूँगा, मछली, सीप, सिवारें
जो धाराओं की उछाल में ऊपर आये
कुछ क्षण ऊपर तैरे, फिर जल-मग्न हो गये।

नीचे मेघधूम का सूना सूना सागर
ऊपर, केवल नभ
गुमसुम-सा उदासीन-सा
और बीच में निराधार-सा बिना नींव का पूरा पर्वत।

कैसे अचल खड़ा है
क्या यह भी जादू है ?
ढालों पर चुप चाप खड़े हैं
बाँझों के छितरे-छितरे वन !
उलटी हुई पुतलियों जैसे
बाँझों के लम्बे नोकीले पत्ते
उलटे,
श्वेत हो गये !

नीचे के कंटक-झाड़ों में अटक-अटक कर
ऊपर चढ़ता आता है अजगर-सा बादल
तने, डालियाँ, पत्ते पहले भूरे पड़ते
लगता जैसे पीछे हटते
धीरे-धीरे पुँछी लकीरों से मिट जाते।

कुछ भी नहीं रहा,
उत्तुंग शिखरमालावाला गरवीला पर्वत
रंगों के कच्चे धब्बे सा धुला, बह गया
घाटी, गाँव, खेत, वन, झरने
सकल सृष्टि ज्यों धुआँ-धुआँ अणुओं में
विशृंखल विभक्त हो बिखर गई है !

शेष बचा हूँ केवल मैं
या मेरे चारों ओर दूर तक फैला हुआ सफ़ेद अँधेरा···

बाकी सब कुछ नष्ट हो गया
गाँव जहाँ पर मेरा घर था
पगडण्डी जिनपर चल मैं शिखरों तक पहुँचा
जंगल जिसमें बड़ी सांझ तक भटका खोया
झरने जिनमें थके, धूल से सने पाँव धो
थकन मिटाई,
सब कुछ, सब कुछ, नष्ट हो गया
शेष बचा हूँ मैं
या मुझको घेरे उजली धूम्र शून्यता !
धीरे-धीरे हार रहा हूँ,
इस ऊँचाई पर चढ़कर ही
जान सका हूँ—हम सब
क्या हैं !
सिर्फ,
बहुत ऊँचे पहाड़ पर चढ़ते बौने !
बौना--जिसको केवल दो पग दीख रहा है
दो पग आगे
दो पग पीछे
दो पग ऊपर
दो पग नीचे
दो पग की केवल जिसकी ज्ञान-परिधि है !
कहाँ पड़ेगा ग़लत क़दम
औ' मीलों लम्बी घाटी मुझको खा जायेगी !
यह अथाह शून्यता
डरा मैं
हाथों से टटोल कर किसको खोज रहा हूँ,
यह है पत्थर, ये हैं जड़ें,
किन्तु यह क्या है ?

अँधियारे में नरम परस-सा
किसका हाथ छू गया मुझको ?
"मैं हूँ एक दूसरा बौना
पगडण्डी से जरा अलग हट
साथ तुम्हारे मैं चलता आया हूँ अब तक.
हारो मत, साहस मत छोड़ो
मैं भी हूँ बौना, वामन हूँ
किन्तु तीन पग माँगे हैं मैंने धरती से
दो पग तुमको दीख रहा है
उसे पार कर बढ़ो
तीसरा पग तो मुझमें सार्थक होगा
मुझ पर छोड़ो,
हर मनुष्य बौना है लेकिन
मैं बौनों में बौना ही बनकर रहता हूँ
हारो मत, साहस मत छोड़ो
इससे भी अथाह शून्य में
बौनों ने ही तीन पगों में धरती नापी।"
पतला पड़ने लगा
दृष्टिरोधी वह परदा
सहसा मुखर हो उठी वह निश्शब्द शून्यता
दीखे नहीं,
मगर चीड़ों ने सन-सन कर मदमाती गन्धों वाले
पवन सँदेसे भेजे
झुरमुट में सहमी चिड़ियों ने
दबे कण्ठ से मुझे पुकारा
दूर कहीं सुन पड़ा पहाड़ी गाने का स्वर !
थोड़ा-सा विश्वास लौट कर आया मुझमें
दीख नहीं पड़ते हैं
पर इस गहन कुहा में
कितने ही जंगली रास्ते आते-जाते

पथिकों से अब भी सजीव हैं
अपराजित है जिनमें चलने की आकांक्षा !
दीख नहीं पड़ता है सूरज
पर दो शिखरों बीच झर रही
दिव्य ज्योति-सी धूप धुईंली !

नदियाँ नीचे चमक उठीं रूपाडोरी-सी
और दूधिया शीशे में से
झलक उठे हैं वृक्ष बाँझ के, पुल लोहे के
धीरे-धीरे परतें कटने लगीं धूम की
यहाँ वहाँ पर
पिघले सोने के पानी-सी
धूप टपकने लगी
गाँव खिल गये फूल से !

बादल जैसे आया वैसे लौट गया है
केवल कुछ बादल के पीछे छूटे टुकड़े
छायादार झाड़ियों में विश्राम कर रहे हैं
जैसे धौरी उजली गायें—
एक अकेला चंचल बादल
चाँदी के हिरने-सा घाटी में चरता है !

शीशे के सामने शीशा

श्री जगदीश गुप्त

आँखों ने आँखों में देखा
—जैसे शीशे के सामने शीशा ।
हम-तुम
—जैसे मोगरे के फूल,
कुसुम के अंदर कुसुम;
लहर के बाद लहर,
कूल के बाद कूल;

नीली गहराइयों में तिरती हुई आँखें,
डूबते हुए अधर;
नीली ऊँचाइयों पर फैलती हुई पाँखें,
सिमटते हुए स्वर;

दो दिशाएँ—एक आकाश
द्वार, द्वारों में खुलते हुए द्वार
विस्तार——असीम, अपार
रूप के भीतर रूप;

आँखों ने आँखों में देखा
—जैसे शीशे के सामने शीशा ।

नये सूरज को प्रणाम

श्री चन्द्रकान्त सिंह

रात खत्म हो गयी;
पूरब में स्वर्ण-रजत देश से—
सूरज के घोड़ों पर बैठ कर
जागरण आ रहा,
उठो, उठो, नमन करो !
बादल के छोटे-छोटे शिशुओं के गाल,
जोत के कुमकुम से किरणों ने रँग दिए
खिली-खुली कलियों की माँग—
सिन्दूरी आभा से किरणों ने भर दिए
आलस की केंचुल को छोड़,
खेतों में चरण धरो !
तरुओं की शाखों पर मिहनत के राग
पंछीगण गा रहे,
टुन-टुन के स्वर : हलवाहे के गीत
वैदिक ऋचाओं—से
वायु की गोदों में झूलते
खेतों की मेड़ों से आ रहे
शिथिल-श्लथ अंगों में—
तेज स्फुरण भरो !
गेहूँ की नई-नई बालियाँ
स्वागत में प्रात के हँस उठीं
अरहर की पाँतों की छाँव में—
गाँव की मजूरिनें,
प्रीत के झूमर गाने को बैठ गईं
"जागोगे·····पावोगे"
"सोवोगे·····खोवोगे"
युग-युग की, जन-जन की सीधी-सी सीख यह
हृदय-प्राण-कर्ण धरो !
सूरज के घोड़ों पर बैठ कर
जागरण आ रहा,
उठो, उठो, नमन करो !

आकाँक्षा

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

अणु बना दो,
एक दिन विस्फोट से
(आज के युग में सहज सम्भव यही)
बन सकूँ वह शक्ति
विद्युत् की प्रवाहित
हो रही जो विश्व में चिरकाल से
है अमर अस्तित्व जिसका व्याप्त सब में सर्वदा।
मत बनाना
शक्ति का वह पुंज
काली ईंट
बेचारी कणों का ढेर,
जो सदा अस्तित्व की
अज्ञान की जड़िमा लिए
झूलती अपने अहं की साँस में
(व्याप्ति का जिसको पता ही कुछ नहीं)
एकरस बैठी रहेगी
इस सड़ी मनहूस छत की पीठ पर !

नई धरती

श्री गिरिजाकुमार माथुर

जन-जीवन संगठित करो !

मिट्टी की
धरती का दीपक
सदियों से पीता
काजल थक,
नए सृजन के अग्नि-कणों से
लाखों रवि सिरजो !

व्यक्ति-स्वार्थ का
घेरा तोड़ो,
कोटि करों से
युग-रथ मोड़ो,
हैं धूसर मैदान बुलाते
शीश महल उतरो !

मकड़ी के जाले
समाज पर,
खंडित स्वर
जीवन खमाच पर,
इस तलहीन खड्ढ में
निज श्रम की चट्टान भरो !

सूने, बंद,
गंधमय घोंघे,
अब न घुटे मन
कृश तन होंगे,
है समाज की सीपी खाली,
मोती-बीज धरो !

व्यक्ति मुक्त हो,
धरा मुक्त हो,
युद्ध मिटे,
जग शांतियुक्त हो,
गली, गाँव, कस्बे, नगरों में
नए मनुज उतरो ।

चाँद का मुँह टेढ़ा है

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध

नगर के बीचों बीच
आधीरात—अँधेरे की काली-स्याह
शिलाओं से बनी हुई
भीतों और अहातों के, काँच-टुकड़े-जमे हुए
ऊँचे-ऊँचे कंधों पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलाई झालरें ।
कारखाना-अहाते के उस पार
धूम्र-मुख चिमनियों के ऊँचे-ऊँचे
उद्‌गार—चिन्हाकार—मीनार,
मीनारों के बीचों बीच
चाँद का है टेढ़ा मुँह !!
भयानक स्याह सन तिरपन का चाँद वह !!
गगन में करफ्यू है,
धरती पर चुपचाप ज़हरीली छिः थूः है !!
पोंपल के खाली पड़े घोंसलों में पक्षियों के,
पैठे हैं खाली हुए कारतूस ।

गंजे-सिर चाँद की सँवलाई किरनों के जासूस
साम-सूम नगर में धीरे-धीरे घूम-घाम
नगर के कोनों के तिकोनों में छुपे हैं !!
चाँद की कनखियों की कोण-गामी किरनें
पीली-पीली रौशनी की, बिछाती हैं
अँधेरे में, पट्टियाँ ।
देखती हैं नगर की ज़िन्दगी का टूटा-फूटा
उदास प्रसार वह ।

समीप विशालाकार
अँधियाले लाल पर
सूनेपन की स्याही में डूबी हुई
चाँदनी भी सँवलाई हुई है !!

भीमाकार पुलों के बहुत नीचे, भयभीत
मनुष्य-बस्ती के बियावान तटों पर

बहते हुए पथरीले नालों की धारा में
धराशायी चाँदनी के होठ काले पड़ गये

हरिजन-गलियों में
लटकी है पेड़ पर
कुहासे के भूतों की साँवली चूनरी—
चूनरी में अटकी है कंजी आँख गंजे-सिर
टेढ़े-मुँह चाँद की।

बारह का वक़्त है,
भुसभुसे उजाले का फुसफुसाता षड्यंत्र
शहर में चारों ओर;
ज़माना भी सख़्त है !!

अजी, इस मोड़ पर
बरगद की घनघोर शाखाओं की गठियल
अजगरी मेहराब—
मरे हुए ज़मानों की संगठित छायाओं में
बसी हुई
सड़ी-बुसी बास लिए—
फैली है गली के
मुहाने में चुपचाप।
लोगों के अरे! आने-जाने में चुपचाप,
अजगरी कमानी से गिरती है टिप-टिप
फड़फड़ाते पत्तियों की बीट—
मानों समय की बीट हो !!
गगन में करफ्यू है,
वृक्षों में बैठे हुए पक्षियों पर करफ्यू है,
धरती पर किन्तु अजी! ज़हरीली छिः थूः है।

बरगद की डाल एक
मुहाने से आगे फैल
सड़क पर बाहरी
लटकती है इस तरह—
मानों कि आदमी के जनम के पहले से
पृथ्वी की छाती पर
जड़ उगली मैमथ की सूँड़ सूँघ रही हो
हवा के लहरीले सिफ़रों को आज भी
घिरी हुई विपदा के घेरे-सी
बरगद की घनी-घनी छाँव में
फूटी हुई चूड़ियों की सूनी-सूनी कलाई-सी
सूनी-सूनी गलियों में
गरीबों के ठाँव में—
चौराहे पर खड़े हुए
भैरों की सिन्दूरी
गेरुई मूरत के पथरीले व्यंग्य के स्मित पर
टेढ़े-मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी,
तिलिस्मी चाँद की राज़-भरी झाँइयाँ।
तजुर्बों का ताबूत
ज़िन्दा यह बरगद
जानता कि भैरों यह कौन है !!
कि भैरों की चट्टानी पीठ पर
पैरों की मजबूत
पत्थरी-सिन्दूरी ईंट पर
भभकते वर्णों के लटकते पोस्टर
ज्वलन्त अक्षर !!

सामने है अँधियाला ताल और
स्याह उसी ताल पर
सँवलाई चाँदनी
समय का घण्टाघर
निराकार घण्टाघर
गगन में चुपचाप अनाकार खड़ा है !!
परन्तु परन्तु ''बतलाते
ज़िन्दगी के काँटे ही
कितनी रात बीत गई

चप्पलों की छपछप,
गली के मुहाने से अजीब-सी आवाज़,

फुसफुसाते हुए शब्द !
जंगल की डालों से गुज़रती हवाओं की सरसर
गली में ज्यों कह जाय
इशारों के आशय,
हवाओं की लहरों के आकार—
किन्हीं ब्रह्म राक्षसों के निराकार
अनाकार
मानों बहस छेड़ दें
बहस जैसे बढ़ जाय
निर्णय पर चली आय
वैसे शब्द बारबार
गलियों की आत्मा में
बोलते हैं एकाएक
अँधेरे के पेट में से
ज्वालाओं की आँत बाहर निकल आय
वैसे, अरे, शब्दों की धार एक
बिजली के टार्च की रोशनी की मार एक
बरगद के खुरदुरे अजगरी तने पर
फैल गयी अकस्मात् ।
बरगद के खुरदुरे अजगरी तने पर
फैल गये हाथ दो
मानों हृदय में छिपी हुई बातों ने सहसा
अँधेरे से बाहर आ भुजाएँ पसारी हों
फैल गये हाथ दो
चिपका गये पोस्टर
बाँके तिरछे वर्ण और
लाल नीले घनघोर
हड़ताली अक्षर

इन्हीं हलचलों के ही कारण तो सहसा
बरगद में पले हुए पंखों की डरी हुई
चौंकी हुई अजीब-सी गन्दी-सी फड़फड़
अँधेरे की आत्मा से करते हुए शिकायत
काँव-काँव करते हुए पक्षियों के जमघट
उड़ने लगे अकस्मात्
मानों अँधेरे के
हृदय में सन्देही शंकाओं के पक्षाघात !!
मद्धिम चाँदनी में एकाएक एकाएक
खपरैलों पर ठहर गई
बिल्ली एक चुपचाप
रजनी के निजी गुप्तचरों की प्रतिनिधि
पूँछ उठाये वह
जँगली तेज़
आँख
फैलाये
यमदूत-पुत्री सी
[सभी देह स्याह, पर
पंजे सिर्फ़ श्वेत और
खून टपकाते हुए नाखून]
देखती है मार्जार
चिपकाता कौन है
मकानों की पीठ पर
अहातों की भीत पर
बरगद की अजगरी डालों के फन्दों पर
अँधेरे के कंधों पर
चिपकाता कौन है ?
चिपकाता कौन है
हड़ताली पोस्टर
बड़े-बड़े अक्षर
बाँके-तिरछे वर्ण और
लम्बे-चौड़े घनघोर
लाल-नीले भयंकर
हड़ताली पोस्टर !!

टेढ़े-मुँह चाँद की ऐयारी रौशनी भी खूब है
मकान-मकान घुस लोहे के गज़ों की जाली
के झरोखों को पार कर
लिपे हुए कमरे में

जेल के कपड़े-सी फैली है चाँदनी,
दूर-दूर काली-काली
धारियों के बड़े-बड़े चौखट्टों के मोटे-मोटे
कपड़े-सी फैली है
लेटी है जालीदार झरोखे से आयी हुई
जेल सुझाती हुई ऐयारी रोशनी !!
अँधियाले ताल पर
काले घिने पंखों के बार-बार
चक्करों के मँड़राते विस्तार
घिना चिमगादड़-दल भटकता है चारों ओर
मानों अहं के अवरुद्ध
अपावन अशुद्ध घेरे में घिरे हुए
नपुंसक पंखों की छटपटाती रफ्तार
घिना चिमगादड़-दल
भटकता है प्यासा-सा,
बुद्धि की आँखों में
स्वार्थों के शीशे-सा !!

बरगद को किन्तु सब
पता था इतिहास,
कोलतारी सड़क पर खड़े हुए सर्वोच्च
गाँधी के पुतले पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानी कि घुग्घू एक—
तिलक के पुतले पर
बैठे हुए घुग्घू से
बातचीत करते हुए
कहता ही जाता है—
"·····मसान में·····
मैंने भी सिद्धि की।
देखो मूठ मार दी
मनुष्यों पर इस तरह···"
तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू ने
देखा कि भयानक लाल मूँठ
काले आसमान में
तैरती-सी धीरे-धीरे जा रही

उद्गार-चिन्हाकार विकराल
तैरता था लाल-लाल !!
देख, उसने कहा कि वाह-वाह
रात के जहाँपनाह
इसीलिए आजकल
दिन के उजाले में भी अँधेरे की साख है,
रात्रि की काँखों में दबी हुई
संस्कृति-पाखी के पंख है सुरक्षित !!
·· ···पी गया आसमान
रात्रि की अँधियाली चाइयाँ घोंट के,
मनुष्यों को मारने के खूब हैं ये टोटके !

गगन में करफ्यू है,
जमाने में जोरदार जहरीली छीः थूः है !!
सराफ़े में बिजली के बूदम
खंभों पर लटके हुए मद्डघिम
दिमाग़ में धुंध है,
चिन्ता है सट्टे की हृदय-विनाशिनी !!
रात्रि की काली स्याह
कड़ाही से अकस्मात्
सड़कों पर फैल गई
सत्यों की मिठाई की चाशनी !!

टेढ़े-मुँह चाँद की ऐयारी रौशनी
भीमाकार पुलों के
ठीक नीचे बैठ कर,
चोरों-सी उचक्कों-सी
नालों और झरनों के तटों पर
किनारे-किनारे चल,
पानी पर झुके हुए
पेड़ों के नीचे बैठ,
रात-बे-रात वह

मछलियाँ फँसाती है
आवारा मछुओं-सी शोहदों-सी चाँदनी

सड़कों के पिछवाड़े
टूटे-फूटे दृश्यों में,
गन्दगी के काले-से नाले के झाग पर
बदमस्त कल्पना-सी फैली थी रात-भर
सेक्स के कष्टों के कवियों के काम-सी !
किंगस्वे में मशहूर
रात की है ज़िन्दगी !
सड़कों की श्रीमान
भारतीय फिरंगी दूकान,
सुगंधित प्रकाश में चमचमाता ईमान
रंगीन चमकती चीजों के सुरभित
स्पर्शों में
शीशों की सुविशाल फ्राँइयों के रमणीय
दृश्यों में
बसी थी चाँदनी
खूबसूरत अमरीकी मेगजीन-पृष्ठों-सी
खुली थी,
नंगी-सी नारियों के
उघरे हुए अंगों के
विभिन्न पोजों में
लेटी थी चाँदनी
सफ़ेद
अण्डरवीअर-सी, आधुनिक प्रतीकों में,
फैली थी
चाँदनी !
करफ्यू नहीं यहाँ, पसन्दगी···सन्दली,
किंगस्वे में मशहूर रात की है ज़िन्दगी

अजी, यह चाँदनी भी बड़ी मसखरा है !!
तिमंज़िले की एक
खिड़की में बिल्ली के सफ़ेद धब्बे-सी
चमकती हुई वह
समेट कर हाथ-पाँव
किसी की ताक में
बैठी हुई चुपचाप
धीरे-से उतरती है
रास्तों पर पथों पर;
चढ़ती है छतों पर
गैलरी में घूम और
खपरैलों पर चढ़ कर
नीमों की शाखों के सहारे
आँगन में उतर कर
कमरों में हलके-पाँव
देखती है, खोजती है—
शहर के कोनों के तिकोनों में छुपी हुई
चाँदनी
सड़क के पेड़ों के गुम्बदों पर चढ़ कर
महल उलांघ कर
मुहल्ले पार कर
गलियों की गुहाओं में दबे-पाँव
खुफिया सुराग में
गुप्तचरी ताक में
जमी हुई खोजती है कौन वह
कंधों पर अँधेरे के
चिपकाता कौन है
भड़कीले पोस्टर,
लम्बे-चौड़े वर्ण और
बाँके-तिरछे घनघोर
लाल-नीले अक्षर ।

कोलतारी सड़क के बीचोंबीच खड़ी हुई
गाँधी की मूर्ति पर
बैठे हुए घुग्घू ने
गाना शुरू किया,
हिचकी की ताल पर
साँसों ने तब

मर जाना
शुरू किया,
टेलीफून-खंभोंपर थमे हुए तारोंने
सट्टे के ट्रंक-कॉल- सुरों में
थर्राना और झनझनाना शुरू किया !
रात्रि का काला-स्याह
कन-टोप पहने हुए
आसमान-बाबा ने हनुमान-चालीसा
डूबी हुई बानी में गाना शुरू किया ।
मसान के उजाड़
पेड़ों की अँधियाली शाख पर
लाल-लाल लटके हुए
प्रकाश के चीथड़े—
हिलते हुए, डुलते हुए, लपट के पल्लू ।
सचाई के अध-जले मुर्दों की चिताओं की
फटी हुई, फूटी हुई दहक में कवियों ने
बहकती कविताएँ गाना शुरू किया ।
संस्कृति के कुहरीले धूएँ से भूतों के
गोल-गोल मटकों से चेहरों ने
नम्रता के घिघियाते स्वांग में
दुनिया को हाथ जोड़
कहना शुरू किया—
बुद्ध के स्तूप में
मानव के सपने
गड़ गये, गाड़े गये !!
ईसा के पंख सब
झड़ गये, झाड़े गये !!
सत्य की
देवदासी-चोलियाँ उतारी गईं
उघारी गईं,
सपनों की आंतें सब
चीरी गईं, फाड़ी गईं !!
बाक़ी सब खोल है,
ज़िन्दगी में झोल है !!

गलियों का सिन्दूरी विकराल
खड़ा हुआ भैरों, किन्तु,
हँस पड़ा खतरनाक़
चाँदनी के चेहरे पर
गलियों की भूरी खाक़
उड़ने लगी धूल और
सँवलाई नंगी हुई चाँदनी ।

और, उस अँधियाले ताल क उस पार
नगर निहारता-सा खड़ा है पहाड़ एक
लोहे की नभ-चुम्बी शिला का चबूतरा
लोहांगी कहाता है
कि जिसके भव्य शीर्ष पर
बड़ा-भारी खँड़हर
खँड़हर के ध्वंसों में बुज़ुर्ग दरख़्त एक
जिसके घने तने पर
लिक्खी हैं प्रेमियों ने
अपनी याद्दाश्तें,
लोहाँगी में हवाएँ
दरख़्त में घुसकर
पत्तों से फुसफुसाती कहती हैं
नगर की व्यथाएँ
सभाओं की कथाएँ
मोर्चों की तड़प और
मकानों के मोर्चे
मीटिंगों के मर्म-राग
अंगारों से भरी हुई
प्राणों की गर्म राख
गलियों में बसी हुई छायाओं के लोक में
छायाएँ हिलीं कुछ
छायाएँ चलीं दो
मद्धिम चाँदनी में

भैरों के सिन्दूरी भयावने मुख पर
छाईं दो छायाएँ
छरहरी झाँइयाँ !!
रात्रि की थाहों में लिपटी हुई साँवली तहों में
ज़िन्दगी की प्रश्नमयी थरथर
थरथराते बेक़ाबू चाँदनी के
पल्ले-सी उड़ती है गगन-कंगूरों पर।
पीपल के पत्तों के कम्प में
चाँदनी के चमकते कम्प—से
ज़िन्दगी की अकुलाई थाहों के अँचल
उड़ते हैं हवा में !!

गलियों के आगे बढ़
बगल में लिए कुछ
मोटे-मोटे कागजों की घनी-घनी भोंगली
लटकाये हाथ में
डिब्बा एक टीन का
डिब्बे में धरे हुए लम्बी-सी कूँची एक
ज़माना नंगे-पैर
कहता मैं पेंटर
शहर है साथ-साथ
कहता मैं कारीगर—
बरगद की गोल-गोल
हड्डियों की पत्तेदार
उलझनों के ढाँचों में
लटकाओ पोस्टर,
गलियों के अलमस्त
फ़क़ीरों के लहरदार
गीतों से फहराओ
चिपकाओ पोस्टर
कहता है कारीगर।

मज़े में आते हुए
पेंटर ने हँस कर
कहा कि ठीक जगह
पोस्टर लगे हैं,
तड़के ही मज़दूर
पढ़ेंगे घूर-घूर,
रास्ते में खड़े-खड़े लोग-बाग
पढ़ेंगे ज़िन्दगी की
झल्लाई हुई आग !
प्यारे भाई कारीगर,
अगर खींच सकूँ मैं--
हड़ताली पोस्टर पढ़ते हुए
लोगों के रेखा-चित्र,
बड़ा मज़ा आएगा।
कत्थई खपरैलों से उठते हुए धुएँ
के रंगों में
आसमानी सियाही मिलाई जाय,
सुबह की किरनों के रंगों में
रात के गृह-दीप-प्रकाश की आशाएँ घोल कर
हिम्मतें लाई जायँ,
स्याहियों से आँख बने
आँखों की पुतली में धधक की लाल-लाल
पाँख बने,
एकाग्र ध्यान-भरी
आँखों की किरनें
पोस्टरों पर गिरें—तब
कहो भाई कैसा हो ?
कारीगर ने साथी के कंधे पर हाथ रख
कहा तब--
मेरे भी करतब सुनो तुम,
धुएँ से कजलाये
कोठे की भीत पर

बाँस की तीली की लेखनी से लिखी थी
राम-कथा व्यथा की
कि आज भी जो सत्य है
लेकिन, भाई, कहाँ अब वक़्त है
तसवीरें बनाने की
इच्छा अभी बाक़ी है,—
ज़िन्दगी भूरी ही नहीं, वह ख़ाकी है।
ज़माने ने नगर के कंधे पर हाथ रख
कह दिया साफ़-साफ़
पैरों के नखों से या डण्डे की नोंक से
धरती की धूल में भी रेखाएँ खींच कर
तसवीरें बनती हैं
बशर्ते कि ज़िन्दगी के चित्र सौ
बनाने का चाव हो
श्रद्धा हो, भाव हो।
कारीगर ने हँसकर
बग़ल में खींच कर पेंटर से कहा, भाई
चित्र बनाते वक़्त
सब स्वार्थ त्यागे जायँ,
अँधेरे से भरे हुए
ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ती-उतरती जो
अभिलाषा—अंध है
ऊपर के कमरे सब अपने लिए बन्द हैं
अपने लिए नहीं वे !
ज़माने ने नगर से यह कहा कि
ग़लत है यह भ्रम है
हमारा अधिकार सम्मिलित श्रम और
छीनने का दम है !
फ़िलहाल तसवीरें
इस समय हम
नहीं बना पायेंगे
अलबत्ता पोस्टर हम लगा जायेंगे।
हम धधकायेंगे।
मानो या मानो मत
आज तो चन्द्र है सविता है,
पोस्टर ही कविता है !!
वेदना के रक्त से लिखे गये
लाल-लाल घनघोर
धधकते पोस्टर
गलियों के कानों में बोलते हैं
धड़कती छाती की प्यार-भरी गर्मी में
भाफ़-बने आँसू के खूँख़ार अक्षर !!
चटाख़-से लगी हुई
राइफ़ली गोली के धड़ाकों से टकरा
प्रतिरोधी अक्षर
ज़माने के पैग़म्बर
टूटता आसमान थामते हैं कंधों पर
हड़ताली पोस्टर
कहते हैं पोस्टर—
आदमी की दर्द-भरी गहरी पुकार सुन
पड़ता है दौड़ जो
आदमी है वह ख़ूब
जैसे तुम भी आदमी
वैसे मैं भी आदमी;
बूढ़ी माँ के झुर्रीदार
चेहरे पर छाये हुए
आँखों में डूबे हुए
ज़िन्दगी के तजुर्बात
बोलते हैं एक साथ
जैसे तुम भी आदमी
वैसे मैं भी आदमी,
चिल्लाते हैं पोस्टर।
धरती का नीला पल्ला काँपता है
यानी आसमान काँपता है,
आदमी के हृदय में करुणा की रिमझिम,
काली इस झड़ी में
विचारों की विद्युत्भी तड़ित् कराहती
क्रोध की गुहाओं का मुँह खोले

शक्ति के पहाड़ दहाड़ते
काली इस झड़ी में वेदना की तड़ित् कराहती
मदद के लिए अब,
करुणा के रोंगटों में सन्नाता
दौड़ पड़ता आदमी,
व आदमी के दौड़ने के साथ-साथ
दौड़ता जहान
और दौड़ पड़ता आसमान !!

मुहल्ले के मुहाने के उस पार
बहस छिड़ी हुई है,
पोस्टर पहने हुए
बरगद की शाखें ढीठ
पोस्टर धारण किये
भैरों की कड़ी पीठ
भैरों और बरगद में बहस खड़ी हुई है
ज़ोरदार जिरह कि कितना समय लगेगा
सुबह होगी कब और
मुश्किल होगी दूर कब

समय का कण-कण
गगन की कालिमा से
बूँद-बूँद चू रहा
तड़ित्-उजाला बन !!

प्यार और इतिहास

श्री केदारनाथ सिंह

आओ, इस अंधकार में अपने नाम कहीं
लिख दें,
औ' खो जायें,—
इसलिये कि हमने इतिहास नहीं रचा,
सिर्फ़ प्यार किया,
दिन फूटा—प्यार किया,
फसल पकी—प्यार किया,
मन ऊबा—प्यार किया,
हमने इतिहास नहीं रचा,
सिर्फ़ प्यार किया।
एक दूसरे में अहरह—
किरनों का उगना,
लपटों का हिलना,
लोहे का गलना देखा!
एक दूसरे के हाथों को छूकर जाना—

रात ढल रही होगी!
एक दूसरे के शब्दों को सुनकर सोचा—
दूर, बहुत दूर कहीं पानी बरसा है,
या पारिजात में पहले फूल आ गये हैं!
संभवतः यहीं कहीं—
हम जो कुछ सोच रहे हैं—
वैसा पहले भी सोच गया था कोई!
दिन आये-गये
और हमने रोका न उन्हें,
ऊषा के आने पर मंत्र नहीं पढ़े,
और गोधूली होने पर—
अगरु-धूम की लहरों समय को नहीं बाँधा!
जाने किस आशा में—
इस तट पर खड़े-खड़े—
एक बहुत छोटा-सा, कँपता-सा, बुझता-सा

दीपक तेरा दिया !
भीतर जितना कुछ था—
हमने गा दिया, विवश गा दिया !
इससे पहले कि हमें कोई आवाज दे कहीं से-
आओ, इस अंधकार में अपने नाम कहीं
लिख दें

औ' खो जायें !
आने वाले पैरों के निशान हो जायें !
संभवतः यहीं कहीं—दिनछिपे अँधेरे में-
फिर कोई सोचेगा—
हमने इतिहास नहीं रचा,—
सिर्फ़ प्यार किया !

प्राण-दर्शन

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

उस दिन अशेष के स्वप्न शेष के नयन मिले
सर्जना नमित-नयना शोभा की रात बनी !

मन के उकसाने पर मैंने
जब दृष्टि घुमाई तब देखा
लहरों के आगे जहाँ न था कुछ लिखा हुआ
सुनसान क्षितिज पर बनती थी रेखा नवीन
अथवा वह थी अव्यक्त बीन
जिसके दो छोरों मे दुरंत
थे रहे झूल
निर्माण-फूल
पृथ्वी अनन्त
आकाश तरंगायित अकूल
अवकाश विकल वाणी-विभोर
मैंने देखा—
उस दिन अशेष का स्पर्श शेष के तार मिले
सर्जना नमित-नयना अरुणिम नवप्रात बनी !

तम के विष का घट गया फूट
विष की धाराएँ लगीं भागने

महाशून्य के विवरों में होकर अधीर
सौरभ के पथ पर दीख पड़ा
छवि का सुवर्ण-पट—
अमृतवाहिनी का लहराता हुआ चीर
जिसके भीतर जगमग-जगमग
उस चिर कुमारिका का शरीर
पृथ्वी की आँखों में कोई मधु-पर्व-राग
कण-कण में गुंजित बार-बार नूपुर-मँजीर
उस दिन अशेष की ज्योति शेष के प्राण मिले
वन्दना नमित-नयना मुकुलित जलजात बनी !

मृत्तिका-पिण्ड या देवालय
छन्दों-से बिखरे पड़े हुए थे क्षण-पल जो
उनकी नीरवता पर अक्रन्त
किस महाव्यक्ति का सिंहासन नयनाभिराम
गीतों से मुखरित किसका सूनापन ललाम
किस अवधि-हीन नयनोन्मीलन की
अनजानी अनुभूति—याकि—
अनकही बात
सिहरन को वाणी मिली
मिली वाणी को सिहरन, स्वराघात
'जय हो' अम्बर बोला अखंड
दुहराया धरती ने सहर्ष
उस दिन अशेष के कल्प शेष के श्वास मिले
चेतना नमित-नयना जीवन-तरु-पात बनी !

धरती को प्राणों में लेकर
आँखों में भर जीवन-निर्झर
अपनी समाधि में व्योम-मग्न

दोनों के बीच उमड़ता है सपनों से अंकित विरह-लग्न
चन्दन की ज्वाला से चर्चित यह विरह-याम
जाना-पहचाना जनम-जनम का, पर अनाम
उच्छ्वासों के पागल बादल रहते घेरे
संदेश सुनाते हैं अधीर
उस दिन अशेष के पुलक शेष के अश्रु मिले
वेदना नमित-नयना रिमझिम बरसात बनी !

इस महाव्याप्ति के बीच विन्दु-सा मैं विभोर
पलकों में अम्बर लिये हुए
धरती का मधु-रस पिये हुए
प्राणों में दोनों की पुकार
धड़कन-धड़कन में दोनों की गति-स्वर-हिलोर
पथ जाना या अनजाना हो
आलोक एक सँग चलता है
तूफानों में भी जलता है
वह बुझता कब—मैं कब बुझता
मैं कब होता हूँ तिमिर-लीन
मेरी मिट्टी भी धरती पर
लिख देती है कविता नवीन
नित जिसका चरण-चरण गाता
उस दिन अशेष का स्नेह शेष के दीप मिले
साधना नमित-नयना पलकों की बात बनी !

लतर

सुश्री कीर्ति चौधरी

बड़े बड़े गुच्छोंवाली
सुर्ख फूलों की लतर,
जिसके लिए कभी जिद थी
यह फूले तो मेरे ही घर

अब कहीं भी दिखती है
किसी के द्वार-वन या उपवन
तो भला लगता है
धीरे-धीरे
जाने क्यों
भूलती ही जाती हूँ मैं
खुद को और अपनापन।
बस भूलती नहीं है तो
बड़े बड़े गुच्छोंवाली
सुर्ख फूलों की लतर
जिसके लिए कभी जिद थी
यह फूले तो मेरे ही घर।

फागुन का महीना आया

श्री कार्तिक नाथ मिश्र

फागुन का महीना आया;
आम में टिकोले आए,
तेरी नई उमंगों की तरह।
पीपल के पत्ते एक-एक कर गिरते जा रहे हैं,
तेरे बचपन की तरह।
अब सुबह औ 'शाम की खुन की में
बदन पर कम्बल टिकता नहीं।

दोपहर की पछिया मे सूखते होंठ
बर्फीती जल से तर रहते नहीं।
पपीहे का कंठ फूट पड़ा है,
हम भी और चुप रह न सकेंगे।

रात में
पुरवैया के कोमल स्पर्श
गंगा का भी प्रशांत तल अशांत किए देते हैं;
बेचारी कोकिला
(कौन समझाए उसे)

वेदना का वेग जिसके वश नहीं;
रह-रह उभरती हूक, बनकर कूक,
तज कर मान्यताएँ भी रूदन की।
कलियाँ पलाश की,
हो उठीं निर्लज्ज एकाएक ।
संयम रहा नहीं,
बन्धन सब तोड़ दिए;
जग परेशान है।
हो गए बच्चे भी गौरैये के अंडों में:
छोड़ दो बूढ़ों को घर की रखवाली करने।

अनोखी साधना

श्री कृष्णकुमार विद्यार्थी

तुम मिले रूप की कल्पना मिल गई,
तुम गए, मिल गई प्यार की साधना।

तुम मिले प्रात की स्वर्ण-रंजित किरण
हर लजीली कली में खिली हास बन,
तुम मिले रात की गोद के मधु-सपन
दो नयन में खिले रूप की प्यास बन;
तुम मिले कल्पना के मृदुल अंक में
खिल गई सप्तरंगी मधुर-भावना।

तुम मिले तो हृदय-व्योम में छा गई
नव-रसों में निमज्जित नई चाँदनी,
तुम मिले तो हुई प्राण-वंशी मुखर
बज उठी प्यार की स्निध-मधु-रागिनी;
तुम मिले धड़कनों को नई गति मिली
हर पुलक को मिली एक नव कामना।

आज तुम दूर हो, दूर है चाँदनी,
दूर हैं इन दृगों के भरमते सपन,
दूर है प्राण से स्निग्ध मधु-रागिनी
दूर हैं कल्पना के रंगीलेभवन;
तुम गए तो हृदय-देश में आ बसी
आँसुओं से धुली मौन आराधना।
तुम मिले रूप की कल्पना मिल गई
तुम गए, मिल गई प्यार को साधना।

गीत

श्री उमाकान्त वर्मा

उस बँसवारी में नई कोंपलें उगीं नहीं
जब मिली सूचना वर्षा ऋतु के आने की।

जम गये अमोले, सघन घास,
मकई के नव अंकुर फूटे
बरसाती भिन्डी खीरा के
मिट्टी के भीतर उर फूटे
ढक गई राह इन घासों से
स्वर्णिम धानी हरियाली ले
अदृश्य निकटतम से आती बोली झिंगुर के गाने की।

फिर, अन्तरिक्ष की छाती पर
कुछ भूरे बादल छितराये
हलकी बारिश हरदम होती
कैसे कोई आये - जाये
झर-झर फुहार से अन्तर में
होती गुदगुदी अजाने में
निखरी सुन्दरता पर गाने का मन होता, अनजाने ही।

कच्चे मकान के पिछवाड़े
जम गया बहुत गन्दा पानी
कागज की नावें तैर रहीं
बच्चों की होगी मनमानी
छप्पर चूता, होती बिछली
दाई की बेटी गिर पड़ती
आती है तब आवाज मेढ़कों के टर्टर् टर्राने की।

जिज्ञासा

श्री उपेन्द्र नारायण सिनहा

एक मानव भीम ने,
था पी लिया—
दानव दुशासन का किसी दिन खून।
और तबसे दौड़ता
मानव विजेता की रगों में
खून दानव का।
एक हिटलर के लिये
ऐटम गिरा इन्सान पर
बन गया कोई विजेता।
और, अब वह त्राण देता सभ्यता को
विश्व को पावों तले अपने कुचल कर।
उलटते इतिहास के पन्ने,
गये दिन लौट आते।
हैं वही विषदन्त, पर
विषधर नये चोले बदलते।
तड़पता मानव बेचारा भूख से,
अपमान की सौ घूँट पीकर!
किन्तु उसका अस्थि में
अब भी रुधिर जो शेष—
उससे जोंक
रखे जा सकेंगे स्वस्थ कितने
और कब तक?—
हो रहे हैं शोध अनुसंधान जग में।

पुण्य-प्रशस्ति

श्री उदयशंकर भट्ट

जय हो, जय हो, देश तुम्हारी जय हो!
जय हो भरत-निवेश, तुम्हारी जय हो!
मंगलमय हो शान्ति-कान्तिमय जीवन,
अभय चरण, उन्नत विवेक, उन्नत मन;

पावन मस्तक गगन तारिका-भूषण;
रवि-शशि-अर्चित, मेघ-पटल-संपूजन;
विंध्य, हिमालय दीर्घबाहु वलयांकित;
गंगा-यमुना धवलकीर्ति रवि शंकित;
तेरे इंगित पर त्रिकाल अभिनय हो;
जय हो, जय हो, देश तुम्हारी जय हो।

ऋषि-मुनि-पूजित कान्तार, वन, उपवन;
पुण्यारण्य विहारी जन—गण—जीवन;
छंदोगान—विधान—भावना—साधन;
बृहदारण्य ब्रह्म अराधन;
राम-कृष्ण-चर्चा अभ्यर्चित अतिधन;
महावीर, शंकर, प्रबुद्ध—पद पावन;
तुम जग-जीवन अमर चेतनामय हो;
जय हो, जय हो, देश तुम्हारी जय हो।

हे वीरों के देश, विमर्दित अरि-दल,
हे धीरों के देश, यशस्वी शतदल;
हे संस्कृति-संदेश, विजय के स्वामी,
परमानन्द विवेक सत्य अनुगामी।
सुख समृद्धि प्रणयेश समुन्नत सुन्दर,
शांत अहिंसक वेश किन्तु प्रलयंकर।
प्राण ओजमय तेजोमय निर्भय हों,
जय हो, जय हो, देश तुम्हारी जय हो।

चली आ रही क्रान्ति पुजारिन-सी नवयुग का दीप जलाये

श्री अंचल

किसकी ज्वालामुखी प्रगति ने राका की जंजीरें काटीं
डूब रही लोहित किरणों में मरणशील तारों की घाटी
चीर चलीं अस्तंगत अन्धकार को किसकी तरुण शिखायें
एक महाज्वाला बन फूटीं किसकी बिजली-सी रेखायें
किस शोषण विहीन अनदेखी-सी समता का प्रबल तकाज़ा
उठा रहा घर-घर से सदियों की हिंसा का रुका जनाज़ा
गूँज रही जनगण के कानों में जाग्रति की अरुण प्रभाती
उगती चेतनता में विप्लव की चिनगारी उड़ती आती
पेट काट कर भूखे तन ने जो सपनों का महल बनाया
उसे रौंदती और ढहाती आती चली नाश की छाया

मिटते से स्वतंत्र आदर्शों में है नये जन्म का नारा
उमड़ रही संगीनों के सिरहाने आज़ादी की धारा
चली आ रही क्रान्ति पुजारिन सी नवयुग का दीप जलाये
कौन प्रवर्तक है जो शोलों के मौसम में आगे आये
दूर नहीं है दीख रहा जन सत्ता का मंदिर बलिदानी
जिसकी ईंट-ईंट के गारे में लिपटी असंख्य कुरबानी
कदम-कदम बलिदान चाहता पथ की धूल लहू की प्यासी
बढ़ते ही आते लो उस पर ये परिवर्तन के अभिलाषी
समय बहुत कम—बिल्कुल कम लिखनी है नये जन्म की पाटी
किसकी ज्वालामुखी प्रगति ने राका की जंजीरें काटीं
जलते मन के गीत जला जाता अम्बर जलती है माटी
डूब रही लोहित किरणों में मरणशील तारों की घाटी

बेगार

श्री अवधेन्द्रदेव नारायण

डूब गया रवि, हुआ गाँव का वातावरण प्रशान्त
लौटे निज खलिहान-खेत से श्रमिक-कृषक परिक्लान्त
उठा धुँआ, दीखने लगे, धूमिल खपड़ैल मकान
ले आये हटिया से दादा खाने का सामान
उधर नैन दो इन्तज़ार में बालम के बेचैन
"अइलन ना साजन अबतक हा! पहुँच गइल अब रैन"
खड़ा पास ही नन्हा धरकर हाय! पेट पर हाथ
आस कि "बाबू ले अइहन-कुछ लड़ुआ अपना साथ"
आये पिया, किन्तु उनके हैं खाली दोनों हाथ
हाय! देख यह दुखिया रानी लगी पीटने माथ
बोले पिया रुँधे-स्वर से हा! बहा अश्रु की धार
"आज न कुछ पा सकलीं रानी, बाँटे पड़ल बेगार

हमसफर

श्री अमर कुमार

चीखती, बेतहाशा
भागती जा रही मेल
जैसे दौड़ की आखिरी मंजिल हो
लड़खड़ाते, थके पैरों को भी
पंख लग जाते हैं।
चक्कर काटते खेत-खलिहान,
मिट्टी के गाँव,
शहर की काजल उगलती चिमनियाँ,
बिजली के काँपते जुगनुओं-से
बल्बों की आँख-मिचौनी;
खिड़कियों के चौकोर फ्रेम-से
झाँकती हैं जिन्दगी की तस्वीरें।
फुटपाथ के ज्योतिषी की तरह
बेवकूफ आँखों से
मैं पढ़ लेना चाहता हूँ
हर चेहरे पर खिंची लकीरों के पीछे का
अजाना इतिहास।
कोने में मुर्दा-सा, खामोश बैठा है जो
अवश्य नौकरी के चक्कर में
परदेश जा रहा है,
या पाई नौकरी छूट गई है
बेरोजगारी और छँटनी के जमाने में।
सुनहरे फ्रेम के चश्मे से
भागते दृश्यों को देखता, गुनगुनाता
अवश्य प्रेम का मारा है,
और मैं शर्तिया कह सकता हूँ,
बाजी लगाकर,
उसकी जेब में टिकट है
सुनहले पर्दों की नगरी बम्बई का।
सामने का गंजा-सिर मुसाफिर
अखबार की ओट से,
भूखी निगाहों-से
आसमानी साड़ी को कनखियों से देखता
अवश्य क्वाँरा है
या उसकी बदसूरत बीवी को
आसमानी साड़ियों का शौक है।
ऐसा लगता है,
रेल का कमरा यह
चिट्ठियों से भरा हुआ डाकिए का थैला हो।
किसी में कमल की नाल से
उजले फूलों की हँसी से
लिखा है—
पूनो की उमड़ती चाँदनी-सा
मेरा प्यार लो तुम।
किसी में अमावस के काजल से
जिन्दगी के दर्द की कहानी,
किस्मत की शिकायत;
किसी में जिन्दगी की धूप-छाँह में
हमसफर होने की शपथ।

बाजूबन्द खुलि-खुलि जाय

श्री अनुरंजन प्रसाद सिंह

निस्तब्ध शान्त वातावरण कच्छ का
स्वच्छ पूजा के अगरु-सा
निश्छल शिशु-कर स्पर्श-सा
माँ के स्तन-का।
सामने रखा है ताजमहल प्लैस्टिक का
खूबसूरत,
मीनारें जिसकी लघुता में अब भी
ताकती हैं आसमान
निर्देश करती हैं
मुहब्बत क्या दायरे में गिरफ्त रह सकती है ?
निस्सीम उसे रहने दो
गगन-सा, अनन्त-सा।
"शाहजहाँ बादशाह ने दौलत का सहारा ले
गरीबों की मुहब्बत का मजाक उड़ाया है"
मेरा भी कच्छ आज
गरीबों की मुहब्बत-सा मूक है
मूक हैं दीवारें
मूक हूँ मैं भी
मुखर है केवल नीरवता कच्छ की।
प्राण मेरे आकुल हैं
गीतों के छन्द बिखर जाते हैं।
भावनाएँ जाती हैं दूर कहीं गगन में.....
मोती का हार टूट जाये विहार में
तो पूँछू मैं प्रश्न एक अपनी प्रिया से
मोती क्यों टूट गये,
लजा गये बिखर कर
गगन के खेतों में छीटे गये तारों के बीज से।
तेरी तो परछाहीं अनेक हो गयी है
मोती को रश्क तेरे आव पर हुआ था।
आलिंगन.....

गीतों के छन्दों का लय से ज्यों।
बाजू के बन्द ससर जाते हैं
जीवन के तारों से रह-रह कर
मन मेरे उतर-उतर जाते हैं
टेबुल पर रेडियो—एच० एम० वी०
बैंड स्प्रेड
सिलोन स्टेशन से
उस्ताद कोई गाता है—
"बाजू बन्द खुलि-खुलि जाय।"
कच्छ के वातायन खुले हैं दूर तक
दृष्टिगत दूर पर भीमकाय, दैत्याकार
फरनेस है टाटा का
भैरवी की रागिनी कोमलतम मधुरतम,
उस्ताद के गीत अभी जारी हैं
बाजू बन्द .....
और फिर उस्ताद के उस्ताद कह रहे हैं
भैरवी के बाद ही :—
मैकलिन का टूथपेस्ट
लगाइये आप बार बार
रात और दिन को,
दाँत को चमकाइये
बिनाका टूथपेस्ट से।
टूटती गति को जोड़-जोड़ चलूँ
और गतिमय लिखूँ कैसे ?
गीत मैं गाऊँ क्या ?
तुक में कहूँ क्या ?
संगीत मैं भरूँ क्या ?
जोड़े जोड़े छन्दों में
पंक्ति में बैठ कर।
निस्तब्ध शान्त वातावरण कच्छ का—।

ताजमहल—रेडियो—बाजूबन्द—भैरवी की रागिनी—
टाटा का फरनेस—टूथपेस्ट—!!!
जीवन की वक्रता सचाई है
जीवन का सत्य है
पंक्ति में बैठे सब झूठे हैं
पंक्ति के क्रम टूट जाने दो
जीवन की वक्रता टूटती परम्परा का द्योतक है
वक्र छन्द प्रतीक हैं जीवन के।

एकान्त-संगीत

श्री अनन्त कुमार 'पाषाण'

सड़क है लम्बी सपाट,
आदमी अकेला है!
ट्राम का न नाम लो
डिब्बा है टीन का;
गाने का 'मूड' है,
तार कसो बीन का!
लो फिर आलाप एक, स्वीकारो शाप एक—
"सड़क है लम्बी सपाट, आदमी अकेला है!"
लोथ पर लोथ हैं—ढेर-सी इमारतें;
बुझी हुई जोत है—सूखा हुआ स्रोत है—
गला है बेसुरा—खस्ता सुर कुरकुरा;
आँख जरा मींचो तो, तार जरा खींचो तो,
होंठों को मींचो तो; घोड़ों को जोतो तो,
खचड़ा यह चलेगा; बुझा दीप जलेगा;
दीप राग गाऊँगा! सावधान हो जाओ—
हाँ-हाँ-हाँ हाँ-हाँ-हाँ—

सड़क है लम्बी सपाट,
औरत के बिना यहाँ आदमी अकेला है!

प्रेम का बुखार हो—एक सौ चार हो।
और कुछ हो न हो—'चार मीनार' हो।
बाल गुफ्फेदार हो—पहलू में प्यार हो।
दिल के मर्तबान में ख्वाब का अचार हो।
नीले से काग़ज़ पर जो हो खुसबू से तर
कुछ चिट्ठी-पत्री हो। हाथों में छत्री हो—
बरसाती आँख हो, खुली हुई पाँख हो,
उड़ती उड़ान हो, उठती उठान हो—
तुम हो अगर पास, पास मेरे जहान हो।
शादी तो बन्धन है—बच्चों का क्रंदन है।
हम तो संन्यासी हैं—माथे पर चंदन है।
शाश्वत की खोज है—'मिक्सचर' का 'डोज' है।

आत्माएँ मिली हैं, क्षण में चिरन्तन है,
रॉबर्ट टेलर से सीखा आलिंगन है।
सट कर ज़रा बैठ जाओ, गाना मैं गाऊँगा,
शुरू हुआ अगर नहीं रुकने पर आऊँगा--
"सड़क है लम्बी सपाट, ढीले हैं ठाट-बाट,
मनुवा अकेला, मेरा मनुवा अकेला है।"

प्रतीक्षारत

श्री अजित कुमार

खिले अगणित फूल
कुछ ऋतुराज के चरणों तले
दूर्वादलों में और

कुछ सिंगार माथे का बने
वृक्षों लताओं के मुकुट जैसे पले।
गंधयुत, मधुमय धरित्री से—
सितारों विद्युतों से तने
नीलाकाश तक—
अनगिनत साँचों में ढले
वे खिले अगणित फूल
(कुटिया में, महल में, या 'विजन-वन-वल्लरी पर'।)
एक मैं हूँ
स्वप्न सज्जित, राग चर्चित पुष्प
आकुल, चिर प्रतीक्षारत कि
मेरी पंखुरी की भाग्य-रेखा पर लिखा है नाम
जिनका, वे अपरिचित देव
जो अब विफलताओं से पराजित हो रहे होंगे—
किसी अज्ञात पथ-निर्देश से संकेत पाकर
जहाँ आएँ,
मुझे देखें : देखते रह जायँ
तोड़ें, सूँघ लें : मन में बसा कर गंध
मसलें : फेंक दें, बस!